नयी तारीख़

काशीनाथसिंह

राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

मूल्य रु० ६ ००

म संस्करण १९७६

प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
८, नेताजी सुभाष मार्ग नयी दिल्ली ११०००२

मुद्रक जिन्दल प्रिंटर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली ११००३२

आवरण रामकुमार

अनुक्रम

कविता की नयी तरंगें

यह पहला मौका था—जी हा पहला ही कहिए, जब मैं अपनी बीवी और दो बच्चो के साथ कही बाहर निकला था और कुछ दिनो के लिए किसी का मेहमान हुआ था।

ऐसा करते समय मेरे दिमाग मे दो बातें थी—पहली यह कि जिस जडता, एकरसता और ऊब को पिछले दस सालो से मैं झेल रहा था उससे नजात पाना बेहद ज़रूरी था। ज़रूरी इसलिए कि छोटी-से-छोटी बात पर भी मेरी झुंझलाहट बढती जा रही थी। बीवी से, बच्चो से, मेहमानो से—गरज कि हर मिलनेवाले से जब भी मैं बोलता, झुंझलाकर बोलता, उन पर नाराज़ हो उठता, उनसे झगडा कर बैठता—और यह सब बिला वजह। दूसरी ओर महीने के-महीने गुजर जाते, पत्नी के चेहरे पर हँसी क्या, मुस्कान तक न दिखायी पडती। इन सारी बातो के लिए उनके पास एक ही जवाब था—'किस्मत'! "जब मेरी किस्मत मे हीं ऐसा लिखा है!" "जब मेरी किस्मत ही ऐसी है!" मेरा उनसे कहना था कि जब उन्हे कारण का पता चल गया है तब तो मुस्कराने मे कोई हर्ज़ नही है और इस तरह रात-दिन रोआँ

गिराये रखना भी गलत है। एक छोटी-सी जिन्दगी दी है हमारे मा-बाप ने, इसलिए जब तक है ताव के साथ जिया जाये। लेकिन जब भी मैं ऐसा कहते-कहते उखड जाता, उन्हें विश्वास हो जाता कि डाक्टर सही था। मुझे अपना रक्तचाप चेक-अप करवा लेना चाहिए, और ऐसा खयाल आते ही वे और भी खिन्न हो उठतीं—"किस्मत मे यदि यही है तो जो होना है, हो।"

दूसरी बात यह कि जिसके यहाँ हम गये थे, उसने काफी तग कर रखा था। वह साल मे, पता नहीं, क्या कर-कराके पन्द्रह बीस रोज की छुट्टी लेता, गैराज से अपनी कार निकालता, उस पर सारा परिवार लादता और दूसरे शहर के लिए चल देता। और दूसरा शहर भी कहा? मेरे घर! यहा साला खाने का ठिकाना नही और कर्ज़ ले-लेकर अण्डे और मछली और गोश्त और फ्रूट जूस और जैम और ड्रिंक और! सारी व्यवस्था उलट-पुलट हो जाती और आनेवाले छह महीने के लिए मेरा दिवाला निकल जाता। मैं तो थोडी देर के लिए खुश भी हो लेता, क्योकि यही मौके होते जब कार पर बैठने का सुख मिलता और मेरी गदन खिडकी के बाहर ही निकली रहती कि जो भी मुझे थोडा-बहुत जानता है, वह देख ले कि मै कोई फालतू आदमी नही हूँ। लेकिन पत्नी की हुलिया खराब हो जाती, क्योकि उनका कहना था कि इनकी तो कोई बात नही लेकिन ड्राइवर और नौकर दोनो मिलकर इतना खाते ह जितना हमारा सारा परिवार।

, वे तो चले जाते लेकिन बीवी को दवा करने मे मेरी हुलिया बैठ जाती !

यही एक मज़ेदार—मजेदार क्या, ददनाक कहिए—वाकया का भी जिक्र कर दूँ। यदि कोई मेहमान आये—रेलगाडी से, तो वापसी के लिए 'आरक्षण' करवायेगा ही, इसलिए हमे इतना पता चल जाता है कि उसे कब जाना है। भविष्य का यह निश्चय दिमाग को राहत और सकून देता है। लेकिन अपनी फिएट गाडी—यह दिमाग को ही नही, भविष्य को भी, अ घ-कारपूर्ण बनाये रखती है। जब भी हमे मौका मिलता, हम सोचते—अँधेरे मे आखें मिचमिचाते और नींद का सपना देखते और बिस्तर पर पडे पडे सोचा करते कि हे प्रभो, हमारे पिछले दिन कब लौटेंगे !

निहायत ही सगीन और गोपनीय एक और मामला है जिसे मैं अपने सीने मे छिपाये हूँ। वे आते हैं, रहते हैं और कहते जाते हैं, "कवीजी, जरा इधर भी ध्यान दीजिए। एक तो आपकी छत बेहद नीची है, दूसरे, इसकी दो धरनें भार से लपककर टढी हो गयी हैं। सावधानी न बरतिएगा तो मकान ही बैठ जायेगा। खर मनाइए कि हम पतले है वरना सीढियाँ ऐसी है कि मोटा आदमी बीच मे ही अँडस जाये। बाथरूम ऐसा है कि इसमे सिफ बैठ और खडे हो सकते हैं इसकी खिडकिया और दरवाजे मोहनजोदडो कालीन ह ऐसे काम न चलेगा, घर मे चार-पाच मच्छरदानिया तो रखा कीजिए कवीजी " एक तरह से देखिए

तो यह हमारे फायदे के लिए दी जानेवाली हिदायतें हैं लेकिन जरा दूसरी तरह से देखिए तो तो देखा आपने ? यह है हमारी जेब से सारे पैसे निकलवा लेना, कपडे तक उतरवा लेना, फिर गले लगाना और अन्त मे चूतड पर चार लात लगाकर चल देना।

ये सारी बातें थी। इसीलिए जब पत्नी ने कहा कि उनकी किस्मत मे बच्चे पदा करना, चूल्हा-चक्की करना और घर मे पडे सडते रहना ही है तो सहसा मैं 'मुगले-आज़म' के पृथ्वीराज कपूर की तरह चहलकदमी करने लगा। मैंने वह मुहल्ला याद करने की कोशिश की जिस पर हमें धावे मारना था। यहा फिर एक दूसरी मुसीबत आन पडी। जैसा मुझे बताया गया था, अब तक उस कालोनी का नाम झगडे मे चल रहा है। बदकिस्मती से उस नयी कालोनी मे दो भूतपूर्व मन्त्रियो के विशाल भवन हैं और विवाद इस पर है कि कालोनी किसके नाम पर हो। नयी सरकार के आवासमन्त्री चूकि दोनो के मित्र हैं इसलिए उन्होने बातचीत के जरिये यह रास्ता निकाला कि जो पहले स्वर्गीय होगा, उसके नाम पर 'कालोनी' और दूसरे के नाम पर 'राज-मार्ग'। मेरे भावी मेज़बान ने बताया था कि दोनो मन्त्री एक-साथ रक्तचाप और मधुमेह के शिकार हो अपने-अपने बिस्तर पर पडे ह और दोनो को दो बार दिल का दौरा पड चुका है।

सो, मैंने उसके दफ्तर के पते पर तार दिया, बीवी और दो बच्चो को साथ लिया और चौथे रोज़ उस शहर के लिए रवाना हो गया।

जिन्दगी मे पहली वार मैंने गाना गाया। वल्कि कहिए—गाया नही, पता नही कैसे अपने-आप मेरे गले से स्वर फूट पडा—कुछ-कुछ आदिकवि वाल्मीकि की तरह, कुछ ऐसा कि मुझे भी अचम्भा हुआ और पत्नी को भी। वच्चो की तो जैसे हालत खराब थी। शायद उन्होने मन-ही-मन तय कर लिया कि अरे, इस आदमी से हम खामखा डरते थे, अव इससे डरने की क्या जरूरत ! ऐसा सोचने का मेरे पास कारण है। गाते समय जैसे ही मैंने कहा कि तालियाँ वजाओ, वे हँस पडे। और सच मानिए, पत्नी भी हँस पडी—खिलखिलाकर ! नहीं, पहले मुस्करायी—देर तक मुस्कराती रही, फिर तो ऐसी हँसी कि वस ! यहीं—इस वक्त मुझे एक नया अनुभव हुआ कि पत्नी भी हँस सकती हैं। जी हाँ, हँसना कतई नही भूली है।

"क्यो वेटो, मुर्गा खाओगे ?" मैं पूछने लगा।

"वकरा खाओगे ?"

"अण्डे खाओगे ? आमलेट और फ्राई ?"

"फल भी खाओगे ? केले और सन्तरे और सेब ?"

"चलो ! जितना खाना हो, खूब खाओ ! जमकर। एकदम लाल होकर आओ। फिर लौटकर मेरा दिमाग मत चाटना !"

"हा तो भई, हो जाय—

"राजा की आयेगी बारात

रँगीली होगी रात

मगन मै नाचूगी ! हो ऽऽऽ नाचूगी !
हा बोलो, नाचूगी ! नाचूगी "

गाडी मे ऐसी मस्ती छायी कि पूछिए मत ! अगल-बगल बैठे मुसाफिर हम लोगो को ही देखते रहे । कुछ तो देखते नही, घूरते रहे—मुझे और बच्चा को नही, पत्नी को । मुझे कतई अटपटा नही लगा—लगा कि मुमकिन है, अब भी उनमे कोई देखने लायक चीज बाकी रह गयी हो जिस पर मेरा ध्यान नही गया है ।

गाने बजाने के साथ ही बच्चे सीट पर खडे होकर—फर्श पर चलकर पहली बार गाडी मे बैठने का मजा लेते रहे । थोडा सा किरकिरापन वहाँ आया जब छोटे को टट्टी लगी । भीड इतनी कि कही पाँव रखने की जगह नही, लेकिन मैंने तत्काल वीररस से काम लिया । ऐसा करना उस समय बहुत जरूरी था, क्योकि घर पर परिवार के राजनीतिक मामलो मे मुझे बार-बार मिमियाते देखकर पत्नी की धारणा हो गयी थी कि मैं बहुत दब्बू और डरपोक हूँ । यही अवसर था जब मैं सिद्ध कर सकता था कि देखो, अगर कोई चोर-उचक्का तुम्हारे गले की जजीर लेकर भागने लगे तो मैं हिम्मत से काम ले सकता हूँ—ऐसा नही हूँ कि मेरे गले मे आवाज भी न निकले ।

जब मैं छोटे को लेकर अपनी सीट पर आया तो गाडी खडी हो गयी थी ।

हम बाहर निकले । मेजबान नही दिखायी पडा । मैंने धीरे-

से पत्नी से कहा, "सामान उठाओ, जल्दी करो। हम प्रथम श्रेणी के डिब्बे के सामने खडे हो जाये।" हम अभी उस डिब्बे की ओर चले ही थे कि उसी तरफ से आता हुआ सानू दिखायी पडा—निराश और टूटा टूटा !

"हाय !" वह जोर से बोला।

मेरी समझ मे न आया कि इसमे 'हाय' कहने की क्या ज़रूरत है ? कौन-सी गाज़ गिर पडी है उसके या मेरे सिर ? (यह बाद मे ध्यान आया कि 'हलो' के बाद 'हाय' मैं कही और भी सुन चुका हूँ—शायद जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के लडके-लडकियो के मुँह से ! तो यह 'हलो' का ही बिल्कुल नया रूप है !)

खैर, उसने मुझसे हाथ मिलाया, "भाई साहब, आप इन लोगो से मिलिए ! आप हैं मिस्टर खन्ना और आप मिस्टर बहल और आप मिस्टर वर्मा जरा एक मिनट इधर तो आइए भाई साहब !" वह मुझे खीचकर अलग ले गया, "क्या कहूँ आपको ? इतने बडे-बडे अफसर मित्र ह ये लोग ! आपने जरा भी अपनी प्रतिष्ठा का ख्याल किया होता ! कम-से-कम स्लीपर तो ले लिया होता !"

"ठीक है, आगे हवाई जहाज से आऊँगा, बस न ?"

"ये लोग आपको जानते हैं—अखबारो के जरिये !" उसने गम्भीर होकर कहा।

"चूल्हे भाड मे जाये ये पिल्ले ! इन्हे क्यो लेकर आये तुम ?"

मुझे गुस्सा आ गया।

"अरे धीरे-धीरे बोलिए।" उसने मेरी कुहनी दबायी, "जगी, सामान उठाओ और चलो। दीदी, आप बच्चों को सँभालिए हां तो साहबान! आप ही हैं कवीजी, जिनका साढू भाई होने का गौरव मुझे प्राप्त है। और मुझे इस बात का इल्म है—गर्व है। पिछले दिनों सरकार के खिलाफ जो प्रदर्शन हुआ था, उसका नेतृत्व आपने ही किया था। आपको ही इस साल का सबसे बड़ा सरकारी पुरस्कार मिला है। आपसे पिछले दिनों राज्यसभा की सदस्यता के लिए कहा गया था, लेकिन इनकार कर दिया था आपने! अभी पेरिस में अक्तूबर में जो कान्फरेन्स होने जा रही है " अफसर मेरे पीछे-पीछे आ रहे थे और इस सारे झूठ ने मेरे पूरे शरीर में एक अकड़ पैदा कर दी थी—इतनी ज्यादा कि जब मैं पुल से उतर रहा था तो महसूस कर रहा था जैसे मैं हवाई जहाज की सीढ़ियों से उतर रहा हूँ, जिसके स्वागत के लिए लाउंज में बहुत सारे लोग हाथ में गुलदस्ते लिये खड़े होंगे।

जब मैं दो कारों के आगे चलनेवाली सानू की गाड़ी में गर्व से भरकर बैठने लगा तो पत्नी ने कान में कहा, "छोटे को पेट में ही दस्त हो गयी है।"

सानू—मेरा साढू भाई और दोस्त!

रेखा—मेरी साली!

दीपू और स्वीटी—इनके फूल-से प्यारे और खूबसूरत बच्चे !

बस इतनी सी इनकी दुनिया है और इस दुनिया मे थोडे दिनो के लिए हम हैं और ये हमे हाथो-हाथ लेने के लिए बेताब हैं।

सुबह के नौ बज रहे हैं और हम 'ब्रेक फास्ट' पर बैठे है। मेरे बच्चे आँखे फाड-फाडकर उस डाइनिंग हॉल को देख रहे हैं जिसके तीन तरफ कमरे हैं—ड्राइग रूम और गेस्ट-रूम के सिवा, और एक तरफ दरवाज़ा जो उनके 'टनिस-कोट' मे खुलता है। पत्नी कभी मुझे देखती है और कभी इस विशाल भवन को और कभी हॉल के बीच दो खम्भो के दरम्यान रखे सोफे को ! मैं साफ देख रहा हूँ कि उनके चेहरे पर मेरा सलाई की डिब्बी-जैमा संकरा और चारो तरफ से बन्द घर उभर आया है मेरी प्यारी पत्नी, इस दुनिया मे सुख बडी मुश्किल से मिलता है और हमारी खुशकिस्मती कि आज मिल गया है। इसलिए उल्टी-सीधी बातें मत सोचो और ड्राइग-रूम से आता हुआ पाश्व सगीत सुनो। सुनो और खाओ। देखो, कैसे-कैसे व्यजन इस मेज पर चले आ रहे हैं ! नाश्ते के नाम पर घर मे मिलनेवाला चना और चाय भूल जाओ !

मैंने आँखो के इशारे से अपने बडे बेटे को मना किया जो मेज के चमचमाते टॉप मे अपनी शक्ल देख रहा था और तरह-तरह के मुह बना रहा था।

"भाई साब, आज रात मैं आप लोगो को 'शीशमहल'

मे निमन्त्रित कर रहा हूँ—डिनर पर !" सानू ने आमलेट का टुकडा काटे मे फँसाये हुए कहा ।

शीशमहल ! शहर का सबसे अच्छा होटल ! और यह 'निमन्त्रण'—तो तहजीब इसे कहते है ! कवीजी, चाय और 'मुकुन्द टी स्टाल' के सिवा भी बहुत-कुछ है इसी मुल्क मे, कभी जाना था आपने ?

मैंने कुछ नही कहा, लेकिन गर्व से पत्नी की ओर देखा। इसके पहले भी उन्हे देखता था, लेकिन इतने आप्यायित नेत्रों से नही। मगर क्या कहिए कि पत्नी दोनो बच्चो को देख रही थी जो आमलेट का भारी-से-भारी हिस्सा अपने छोटे-से मुह मे ठूस रहे थे। उनके हाथ मे एक-एक सेब पडा हुआ था और निगाहें कभी केले पर, कभी लंगडा आम पर, और कभी टोस्ट पर दौड लगा रही थी। बडे लडके गुड्डू ने तो मुह मे इतना अण्डा ठूँस लिया था कि जबडे तक नही चल पा रहे थे।

पत्नी शर्म से कभी मुझे देख रही थी, कभी उन्हे।

बच्चे उनके भी थे मगर क्या बात थी ! दीपू प्लेट मे एक छोटा सा टुकडा तोडता और मुँह मे डालता और इस तरह मम्मी की ओर देखते हुए हौले हौले जीभ डुलाता, जैसे—'वाह, क्या बना है !' जब उसका काटा प्लेट से टकराकर मेज पर गिर पडा और मम्मी ने पानी से धोकर फिर प्लेट मे रखा तो दीपू ने सिर हिलाया—"थकू !"

स्वीटी छोटी थी। उससे खाने के लिए जिद की जा रही

थी, लेकिन उसे भूख न थी। मम्मी बार-बार उसे सेब देती लेकिन वह सिर हिलाती—"नो मम्मा, थकू!" वह प्यार-भरी नज़रो से रेखा और स्वीटी को देखता रहा, देखता रहा, फिर लयात्मक स्वर मे बोला, "जाने भी दो डार्लिंग! क्यो दिक कर रही हो?"

"देखते नही, कितनी दुबली है?" रेखा ने कहा और एक खूबसूरत-सा सेब जबदस्ती पकडा दिया। स्वीटी मेज़ की मदद से नीचे उतरी और हॉल मे सेब के साथ खेलने लगी। वह कभी इधर से लुढकाती, सेब सामने की दीवार से टकराता, और उधर से फेकती तो फ्रिज से टकरा जाता। रेखा उस पर सौ जान से निछावर हो रही थी।

"दीदी, जब अगली बार आयेगी तो इस हॉल मे एक शानदान कालीन देखेंगी।" रेखा ने कहा।

पत्नी ने पूछा, "आर्डर दे दिया है क्या?"

"जाने कब का! हो सकता है, आपके जाते-जाते आ जाये!" सानू बोला।

बच्चे खाये चले जा रहे थे और बडी हसरत से उस सेब को देख रहे थे जो इधर उधर नगे फर्श पर लुढक रहा था। सच कहिए तो वे इस ताक मे थे कि कब स्वीटी इस खेल से ऊब जाये और वे सेब उठा लें।

"डाली!" सानू केले के छिलके उतारता हुआ रेखा से बोला, "अगर भाई साहब के यहाँ आने की खबर अखबार मे

आ जाये तो यहाँ के सारे कवि और लेखक भीड लगा लेंगे—जानती हो कि नही ? कहिए भाई साहब, तो फोन कर दें। आपकी मेहरबानी से सभी सम्पादक अपने चेले हैं।"

"अरे नही भई, यहा हम आराम के लिए आये हैं।" मैंने पत्नी की ओर देखा।

पत्नी हँसी, "यहाँ तो मुझे आदमी की तरह रहने दीजिए।"

हम सब एकसाथ हँस पडे। सानू ने कॉफी सिप करते हुए कहा, "वैसे तो भाई साहब, जिन्हे हमारे रिश्ते का पता है, वे सभी मुझसे आपकी तारीफ करते हैं, लेकिन आपकी किताबें मेरे पल्ले नही पडती। क्यो डाली, तुम भी यही कह रही थी ?"

प्रश्न गम्भीर था। मैंने समझाना शुरू किया कि कायदे से मैं किनके लिए लिखता हूँ।

गुड्डू ने सारी तश्तरियाँ चट करने के बाद चाय का प्याला उठाया। उसका हाथ काँप रहा था। मैंने रुककर उसकी मदद करनी चाही, लेकिन सानू ने रोका, "न, वह जो कर रहा है, करने दें। सेल्फ-डिपेडेट होने दीजिए।" मैंने छोड दिया। उसने प्याले को ओठो से सुडका ही था कि जीभ जल गयी, प्याला हाथ से छूटा और चाय बहती हुई रेखा की साडी पर टपकने लगी।

"ओ गाड।" रेखा हल्के से चीखी और सहसा मुस्करायी। उसने प्यार से गुड्डू के गाल थपथपाये और बाथरूम की ओर भागी।

(पत्नी ने बाद मे बताया कि साडी बनारसी सिल्क की थी

और वडी महँगी थी।)

हम एकदम चुप हो गये। पत्नी डरी हुई आँखो से कभी मुझे देखती, कभी गुड्डू को, और कभी सानू को। जीभ जलने से गुड्डू की आँखे छलछला आयी थी। वह सहमा हुआ पिटने का इन्तज़ार कर रहा था।

"वदतमीज कही के!" पत्नी बुदवुदायी।

"नही वेटे, कोई वात नही।" सानू ने हँसकर गुड्डू की पीठ थपथपायी, सिगरेट-केस से एक सिगरेट निकाला और ओठो मे दवाया। वह गम्भीर हो गया था और धुआँ छोडते हुए कोई पश्चिमी धुन गुनगुना रहा था। उसकी नजर वीच-वीच मे वाथ-रूम की ओर चली जाती थी।

"हरामी!" पत्नी अवकी थोडा जोर से बोली।

"डाऽऽऽली!" सानू ने गाते हुए स्वर मे रेखा को आवाज दी, "वक्त हो गया है, जल्दी करो।"

रेखा ने वाथरूम के अन्दर से ही दाई को पुकारा, "साडी ड्राई-क्लीनर को दे आ। सुनती है? जल्दी कर!" और वह वाहर निकल आयी, "चलो!" उसने कहा और जाकर शीशे के आगे खडी हो गयी।

"वण्डरफुल!" सानू ने कहा और रेखा के कन्धे पर हाथ रखा। उसने वगैर उसकी ओर देखे उसका हाथ झटक दिया, "मज़ाक अच्छा नही लगता।"

सानू हमे देखकर खिसियानी हसी हँसा और कोमल की

तरफ चाबी फकी, "गाडी बाहर निकालो ! भाई साहब, ये सो नही आ सकेंगी लेकिन लच मे मैं आपका साथ दूगा।"

"ओक्के !" मैंने ज़ाहिर कर दिया कि वक्त-ज़रूरत जितनी अंग्रेज़ी हमे भी आती है।

कोमल इस बीच खाने की मेज़ साफ कर रहा था। उसने जैसे ही ताली उठायी, रेखा घूम पडी, "रुको ! तुमसे सौ बार कहा है कि चाय से भरकर प्याला मत दिया करो। तुमने क्यो दिया ?"

"साब साब !" उसने हकलाते हुए सानू को देखा।

"क्या साब ? इधर देखो, क्यो दिया ?"

"भरा नही था साब !"

"तुमने दिया क्यो ?"

"भरा नही, खाली था साब !"

रेखा गुस्से मे कापती हुई उसके सामने आ गयी, "तुमने क्यो दिया ? मेरी बात का जवाब दो।"

कोमल सिर झुकाकर चुप हो गया।

सानू दरवाजे के पास खडा होकर हौले-हौले सीटी बजा रहा था और अपनी टाई की गाँठ ठीक कर रहा था।

"अरे बोलता क्यों नही ?" रेखा दाँत पीसती हुई एक कदम और आगे आ गयी, "क्यो दिया तुमने ?"

"खाली !" उसने मदद के लिए जैसे सानू को देखा।

—चटाख। "खाली के बच्चे !" रेखा ने कसकर एक थप्पड

लगाया।

दीपू ने तालियाँ बजायीं और हिकारत से कहा, "ईडियट बास्टर्ड।"

गुड्डू मा के सीने से चिपक गया और हैरत से दीपू देखने लगा।

"तो साहबान! डेढ बजे!" सानू ने रेखा की कुहनी पक और वे बाहर हो गये।

पत्नी कुछ देर चुपचाप बैठी रही, फिर धीरे-से उठकर को के पास गयी, "कोमल, गलती तुम्हारी नहीं थी।"

"दीदी!" उसने सिर उठाया, "यह कोई नयी बात न है। मैंने साल-भर पहले बहन की शादी के लिए पाँच सौ रु लिये थे, उसी का भुगतान कर रहा हूँ। यह सब किस्मत खेल है।"

"वहवा वहवा! देखा, सोचा, किस्मत यहाँ भी तुम्ह साथ है।" मैं कुछ और कहते-कहते रह गया, क्योंकि मेरी आव के साथ ही उसने अपना चेहरा मेरी ओर कर दिया था।

उसकी आखो मे आसू थे।

मैंने सिर झुका लिया और झूठ मूठ उँगली से मेज पर लक खीचने लगा।

226

रेखा कचहरी चली गयी।

सानू अपने दफ्तर !

दीपू और स्वीटी अपने मदान मे—यानी हॉल के एक चौथाई आयतन को लकडी से घेरता हुआ एक मैदान जिसमे खेल और मनोरजन की सारी सुविधाएँ जुटायी गयी थी । वे ग्यारह बजे तक खेलेगे, फिर नहायगे, खायेगे, सोयेगे, फिर फलो का जूस, टीचर के आने पर घण्टे-भर पढाई, शाम को टहलना, फिर अर्थात् नियमित जीवन और उस जीवन का सिलसिलेवार बनाये रखने के लिए एक नौकर !

शुरू म गुड्डू और छोटे ने उन बच्चो के साथ मिलकर खेलने की कोशिश की, लेकिन अन्त मे निकाल बाहर किये गये । पत्नी, मैंने और नौकर ने समझौते की बडी कोशिश की मगर कोई लाभ नही । आरोप गम्भीर थे—एक तो यह कि जो खेल वे खेलते है, वह इनकी समझ मे नही आ रहा है, दूसरे ये इस तरह चीखते हैं कि कान के पर्दे फट जायँ, तीसरे ये अक्सर नियम तोडते है और लड पडते है । इन्ह खेल का 'एटिकेट' तक नही मालूम । लिहाजा ये मैदान के बाहर जायँ और वहाँ से खडे होकर देखे ।

नहाकर जब मैं अपने कमरे मे गया तो देखा—पत्नी गुमसुम आख खोले छत देखे जा रही है । मुझे कुछ अटपटा लगा । म उनके पास पहुँचा और प्यार से बोला, "मालूम है ? शाम को 'शीशमहल' चलाना है डिनर !" उनकी आख के किनारे से एक बूद ढुलकी और कान की दीवार मे चली गयी । इसका मतलब

कि अब तक बीती घटना वे नही भूल सकी थी—चाहे वह साडी का खराब होना हो या कोमल का पिटना या दोनो। बात तो साडी से ही शुरू हुई थी, लेकिन मेरी समझ से उसे लेकर पड रहना वेतुकी बात थी।

"यार, खुश होओ कि साडी तुम्हारी नही थी।" मैंने उनकी नाक हिलायी।

मैंने गौर किया कि गद्दे स्पज के है और हिलने डुलने मे उछाल रहे हैं! कवीजी, मस्ती लो, फिर देखा जायेगा! मैंने कपडे उतारे और नेकर बनियान मे देर तक उछलता रहा।

"पापा, हम बाहर जा रहे हैं।" गुड्डू उदास-उदास मेरे पास आया। उसकी ऐसी आवाज मैंने कम ही सुनी थी।

"पापा, हम गुल्ली-डण्डा खेलने जा रहे है।" छोटे बोला।

"तुम लोगो का दिमाग खराब हो गया है? ऐ, यह धूप और ऊपर से लू! बाहर जाओग? कहाँ बाहर जाओगे?" मुझे गुस्सा आ गया था।

वे वापस दरवाजे के पास लौट गये।

"रानी!" ऐसे तो रानी, पत्नी के घर का नाम ही था, लेकिन जिस लहजे मे मैंने उनसे कहा, सम्बोधन अपने आप ही राज पाट से जुड गया, "रानी, सुख ही सुख है। मैंने तो इतने अण्डे और सेब खाये कि पूछो मत! मजा आ गया अब जरा पता करती कि लच मे क्या क्या तयार हो रहा हे!"

"मैंने आज तक नही पूछा, लेकिन आज पूछ रही हू"

"ऐ रानी, कुएँ के भीतर मे बोल रही हो क्या ? अरे कड़क-कर पूछो ! अपने मर्द से बतिया रही हो, किसी प्रेमी से नही।" मैं उछलकर बैठ गया, "हाँ बोलो।"

"तुम्हारी क्या तनख्वाह है ?"

"क्या मतलब !" मैं अचकचाया, "तनख्वाह ? मतलब क्या है इसका ? बहरहाल तुम जानती हो !"

"तुम बारह साल से नौकरी कर रहे हो। सानू से अधिक पाते हो। और जब आना हुआ तो कर्ज लेकर आये।" जैसे हिन्दी फिल्मो की कोई जासूसी अदृश्य शक्ति अपनी गुरु-गम्भीर आवाज मे बोलती है, कुछ वैसी ही आवाज मेरे कानो मे पड़ी।

'यार, हद हो तुम भी ! चलते ही चुकता कर देंगे।"

"कहाँ से चुकता कर दोगे ?"

"यार, बेमतलब की बातें करके बोर मत करो। सुनो पार्श्वसंगीत यानी रेकार्ड सुनो। कौन गा रहा है, पता है ? छायी बहार है, जिया बेकरार है नही, अब यही देखो। मशीन और आदमी का फर्क देखो। अगर गानेवाला आदमी होता तो यह न गाता। क्यो ? क्योकि बहार नही छायी है, बेहद उमस है, पसीना हो रहा है, बाहर लू भी चल रही है ऐसी हालत को मौसम ही नही कहेंगे, बहार क्या खाक कहेंगे ? फिर भी गाना अच्छा है। एक फर्क और देखो, रेकार्ड-प्लेयर और रेडियो मे। बात थोडी विज्ञान की तरफ जरूर जा रही है, लेकिन कोई बात नही " मैं यह देखने के लिए कि मेरी बात सुनी जा रही

है या नही, रुक गया।

"उसकी तनख्वाह तुम्हारे से आधी है।"

"तो क्या करूँ ? डूब मरूँ या अपने मे से आधी उसे दे दू ? तुम चाहती क्या हो ?" मैं ताव खा गया लेकिन लगा कि कही कुछ मुझसे गडबड हो गया। जवाब दूसरी तरह का होना चाहिए—डियर ! डार्लिंग ! ऐसा मत समझो कि सानू की सुनकर डार्लिंग कह रहा हूँ, अपने-आप कह रहा हूँ मैं। देखो ! यहाँ से —दिल से कह रहा हूँ तो डार्लिंग ! घूस ! इनका एक ही उत्तर है—घूस, बेईमानी, भ्रष्टाचार, बलात्कार वगैरह प्रिये, ये जो सब आबा काबा देख रही हो न, सब घूस !

पत्नी सोये से वठ गयी। थोडी देर बाद उठी और हॉल की तरफ चली गयी। म मन ही-मन इस बात के लिए खुश था कि आज पत्नी ने एक बार भी 'किस्मत' का नाम नही लिया। इसलिए जब दुबारा वे अन्दर आयी तो मै डरा। लेकिन उनका चेहरा अबकी और भी चुचका और लम्बोतरा नजर आया। वे पलग पर फिर लेट गयी और आखें फिर छत पर।

"मेरी बात मानो, तुम नौकरी छोड दो।"

"क्या ?" मैं सकपका गया, "नौकरी छोड दो ? क्या नौकरी छोड दू ? हजार-बारह सौ रुपये महीने क्या काट रहा है ? वाह रे वाह ! छोड दो ! और चाहती हो, चोरी करूँ ? डाका डालूँ ? चार सौ बीसी करूँ ?"

"रुको, इस तरह चिल्लाओ मत ! अगर रेकार्ड-प्लेयर बन्द

करना आता हो तो पहले उसे बन्द कर आओ।" वाक्य खत्म करते-करते वे मुस्करायीं, आँखो से नहीं, पूरे चेहरे से। मैं उन्हे देखकर सन्न रह गया।

मैंने कोमल को आवाज देकर रेकार्ड बन्द करवा दिया।

"तुम यह सब कुछ मत करो, बस नौकरी छोड दो। खोमचे लगाओ, मूँगफली बेचो, बिसातखाने की दुकान करो, विश्वनाथ गली मे चूडियाँ पहनाओ, जो भी करोगे मुझे सन्तोष होगा, लेकिन यह नौकरी ? "

"यार सोना !" मैं बेचैनी से भर उठा, "यार, मेरे डार्लिंग कहने का यही इनाम है ? य तुम्हारी बातें ?"

"सुनो सुनो ! पूरी बात तो सुनो ! यह बताओ कि सरकारी नौकरी तुम भी करते हो और सानू भी ! तुम बारह साल से कर रहे हो और वह पाँच साल से ! बुद्धि मे, ज्ञान में, अनुभव और समझदारी मे वह तुमसे पीछे है ! लेकिन वह कौन-सा हुनर जानता है कि उसके पास सब कुछ है और तुम्हारे पास ?"

"रुको, रुको अब ! जब तुमने सवाल किया है तो रुको।" मैं खडा हो गया, "अब तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। सोलहों आने खराब है। तुम-जैसे लोग इस धरती पर सुखी नही रह सकते। दुख चिन्ता ग्लानि आसू शिकायत ! इन्ही के साथ पैदा होते हैं ये लोग, समझी ? मैं उतनी दूर से—शहर बनारस से—इसीलिए आया था कि दुनिया देखोगी, तबीयत बदलेगी, खाने-पीने को अच्छी अच्छी चीजें मिलेंगी, घूमने के

लिए कार मिलेगी फिर साल-भर तो वहाँ सडना ही है, लेकिन यहा ? अब मैं तुम्हारे पास नही बैठ सकता।"

मै बाहर निकलने लगा।

"मैं जानती हूँ कि तुम क्या जवाब दोगे।"

"शट-अप!" मैं जैसे ही बाहर आया कि स्तब्ध रह गया। छोटे दरवाज़े के पास नगी फर्श पर बाह का तकिया बनाये लेट गया था। उसकी आँखो से आसू गिरे थे और गालो पर सूख गये थे। गड्डू दीवार का सहारा लिये खडा था और हॉल खाली पडा था। वहाँ से गुसलखाने मे नहानेवाले दीपू और स्वीटी की खिलखिलाहटें सुनायी पड रही थी।

मैंने छोट को कन्धे पर उठाया और चुपके से लाकर बिस्तरे पर सुला दिया।

"पापा! घर कब चलोगे।" छोट सोये-सोये बोला।

"अरे? जगा है क्या वे?" मैंने उसके गाल थपथपाये, "और गुड्डू! इधर आ, तू वहाँ खडा खडा क्या कर रहा है? चल, सो जा! सोना, देख रही हो तमाशा? आज आये हुए मुश्किल से सात-आठ घण्टे हुए और पापा, घर कब चलोगे?, और वहाँ दिमाग चाट रहे थे!"

—

तो पहले दिन जो कुछ हुआ, उसे अच्छा नही कहा जा सकता। किसी भी हालत मे नहीं। हम वहा तफरीह के लिए गये थे,

भातिक मामलो पर विचार करने के लिए नही। लेकिन चीज़ हमारी इच्छा के खिलाफ और गडबड होती गयी।

बेमुरव्वत खाने के कारण छोट का पट खराब हो गया। उसे पतले दस्त आने शुरू हुए। लाख मना करने पर भी वह खाता और गुसलखाने भागता। वहाँ से आता, फिर खाता और फिर भागता। दवा भी चल रही थी और पेट भी।

इसके ठीक उल्टा गुड्डू की हालत थी। खाने मे उसकी दिलचस्पी ही खत्म हो गयी थी। उसमे अद्भुत बदलाव आता जा रहा था। घर की वे सारी आदत—धीगा-मुश्ती, मारपीट, उछल-कूद जैसे बचपन की बातें हो गयी थी। वह काफी गुमसुम रहने लगा था। न हॉल मे खेलता और न बाहर खेलने जाता। वह या तो कमरे मे बैठा कहानी की किताब पढा करता या पत्रिकाओ की तस्वीर देखा करता या सुबह और शाम के वक्त बरामदे म पडी किसी कुर्सी मे बठकर—गाल पर हाथ रखे सामने टुकुर-टुकुर ताका करता।

मानू ने तो नही, लेकिन रेखा ने एक दिन दीपू और स्वीटी की जमकर पिटायी की, क्योकि उन्होने गुड्डू और छोट की वजह से 'साले' 'हरामी' 'ब' जसी गालिया सीख ली थी और उनके भीतर 'गँवरपन' बढ गया था।

पहले दिन के बाद से ही मेरे और पत्नी के बीच बालचाल लगभग बन्द-सी हो गयी थी। कूलर की हवा से उन्हे सर्दी लग गयी थी। हल्का हल्का बुखार रहता था और खाँसी भी आती

थी। फिर भी हम हर जगह साथ जाते, घूमते, दावतें खाते और सिनेमा देखते। हमारा रिश्ता एक बडी मजेदार स्थिति मे पहुँच गया था। हम सानू या रेखा के साथ खूब चहकते, दिल खोलकर बात करते, हँसते, लेकिन जबअपने कमरे मे आते—चुप! किसी को आभास न था कि हमारे रिश्ते पर क्या गुजर रही है। पत्नी अधिकतर बिस्तरे पर पडी-पडी छत की ओर देखा करती। इसी दौरान जो सबसे अच्छी बात हुई वह यह कि उन्होने 'किस्मत' को कोसना बन्द कर दिया था, लेकिन इसकी जगह ले ली एक खास तरह की 'मुस्कराहट' ने, जो पहले कभी उनके चेहरे पर नही दिखायी पडती थी। मैं जब कभी किसी मसले पर उनसे बात करना भी चाहता तो वे मेरी ओर देखती रहती और धीरे से बस मुस्करा देती। उदाहरण के लिए जब मैंने उनस पूछा कि 'सानू मुझसे छोटा है। उसने हमारे बच्चो के लिए सूट खरीदा है, कुछ हमे भी करना चाहिए। हम क्या करे—क्या कर सकते हैं?' या 'क्या हमारे पास इतने पैसे रह जायेंगे कि हम कोमल, जगी, दाई, ड्राइवर वगैरह को टिप दे सकें?' तो वही मुस्कान उनके चेहरे पर नाच आयी।

और एक बार तो वे मुस्करायी नही, बडी चुभती बात कह गयी। सिलसिलेवार ढग से तो वह प्रसग नही याद है मगर इतना ध्यान आ रहा है कि मैं सानू की बटियावाली जापानी पतलून पहने 'ड्राइग-रूम' मे नायलन के कालीन पर लेटा था और कोई किताब पलट रहा था, वे आयी और देर तक खडी

रही।

"पैण्ट अच्छा लग रहा है।" तीसरा या चौथा रोज़ था जब उनकी जबान अपने-आप खुली थी।

मैं मारे खुशी के बैठ गया, इसलिए कि वोली तो! मैंने टागें फैलायी और पतलून को गौर से देखा—"है न?"

"और देखो, यह कालीन भी कितना अच्छा है?"

"मालूम है? नायलन का है। जरा चलकर देखो!"

और मजा यह कि वे सचमुच चलने लगी और जाकर खिडकी के पास खडी हो गयी। लतरो मे फूल आये थे और परदो से हिलमिल गये थे। उन्होने एक फूल तोडा और वोली, "देखो यह फूल! कितना प्यारा है!"

"हा, इस लतर का नाम देखो, अभी याद आ जायेगा।" मै सोचने लगा।

"इसका मतलब है," वे मेरी ओर घूमी, "इसका मतलब यह है कि वेईमानी और घूसखोरी अच्छी लगती है लेकिन दूसरे की, चीजें पसद है मगर "

म चमककर खडा हो गया—क्या मजेदार वात शुरू हुई थी, लेकिन इस औरत को देखो, इसका दिमाग खराव हो गया है!

"तुम! साली तुम! " मैं गुस्से से कापने लगा और जाने कैसे पत्नी के लिए मेरे मुह से गाली निकल गयी, "यही एक मुल्क है जिसमे झूठ, फरेव, वेईमानी, धूर्तता, घूसखोरी इतनी हसरत की नजर से देखी जाती हैं। समझी? हसरत की नज़र से!"

"यह तुम किससे कह रहे हो ?" वे खिडकी के सहारे वैसे ही खडी रही।

"तुमसे ! सबसे ! और अपने-आपसे भी !"

"अगर तुम फिल्मो मे होते तो बडे अच्छे सवाद लिखते ! और इस तरह के कई पैण्ट भी पहनते !" वे मुस्कराने लगी।

मैं वापस आकर सोफे पर ढह गया, "सोना, यहा आकर तुम्हे क्या हो गया ? जो कुछ यहाँ देख सुन रही हो, अगर इन्ही कारणो से है तो इसे पहले भी तुम जानती थी। यार, हम यहा बडी उम्मीद से आये थे, लेकिन तुम लगातार मुझ पर बरस रही हो—व्यग कर रही हो ! इससे अगर तुम्हे राहत मिलती हो तो ठीक है, करो। "

"नही, मुझे गलत मत समझो। यह जरूर है कि यहाँ मेरा दिमाग उलट-पुलट हो गया है। अच्छे बुरे और गलत-सही का कुछ पता नही चल रहा है। अजीब सा घालमेल हो गया है सब। अपने पास जो नही था—ऊपर-ऊपर से भले कुछ कह दिया करूँ—लेकिन उसके लिए किसी से कोई शिकायत नही थी। शुरू मे—इधर की नही, पहले की बात कर रही हूँ मैं—दूसरो को देखकर मुझमे हीनता जरूर पैदा होती थी लेकिन अपने को समझा लेती थी, बाद मे तो मुझे उनसे चिढ होते होते नफरत तक हो गयी थी। और आज भी है यह। और यह मैंने तुमसे जाना था, इसमे दो राय नही। तुम्हारी बाते सुन-सुनकर ! तुम्हारे विचारो

की जानकारी के कारण। लेकिन यहाँ जिस तरह मैं तुम्हें उन सारी सुविधाओं की तरफ ललचायी आँखों से ताकते हुए देखती हूँ तो सोचती हूँ—बुरा न मानना मेरी बात का—सोचती हूँ कि कहीं इनके खिलाफ तुम इसलिए तो नहीं थे कि ये दूसरों के पास क्यों हैं, तुम्हारे पास क्या नहीं ?"

वे खिड़की से चलकर मेरे पास आ गयी थीं और सामने की कुर्सी पर बैठ गयी थीं। उनका स्वर सहज और गम्भीर था, "एक बात का जवाब दोगे ? अगर बेईमानी बुरी चीज है तो ये चीजें क्यों अच्छी लग रही हैं और अगर ये सचमुच अच्छी हैं तो बेईमानी और घूसखोरी कैसे बुरी हैं ?"

"डियर !" मैं उठकर बैठ गया, "मैं इतना बेवकूफ नहीं हूँ कि तुम्हारे सवाल को न समझूँ।"

वे शरारत से भरी हँसी हँस पड़ीं, "यही पूछ रही थी मैं ?"

"नहीं, तुम पूछ रही थीं कि मैं सानू को गालियाँ क्यों नहीं देता, उसका मजाक क्यों नहीं उड़ाता, उसके साथ मार-पीट क्यों नहीं कर बैठता ? और यह भी कि मैं यहाँ खुश क्यों हूँ, उसके ऐशो-आराम को देखकर रो क्यों नहीं रहा हूँ ? जबकि यह याद रखो कि यह रिश्ता मेरा नहीं, तुम्हारा है, बहन तुम्हारी है, यहाँ पर मैं तुम्हारी खातिर हूँ वरना वरना " मैंने झटके से दरवाजा खोला और बाहर आ गया।

बाहर पिछले दो रोज की तरह आसमान में बादल थे। उमस बढ़ गयी थी। यह धूप और लू से तो अच्छा था। जून

खत्म होने को आ रहा था और अब तक बारिश नही हुई थी। सामने कच्ची सडक थी जिस पर गाडी के पहियो के निशान थे और उसके आगे कई खाली और समतल प्लाट थे जिनमे से अधिकाश मे ईंटें गिरायी गयी थी और एक ट्रक खडी खडी देर से हुर्रर्र-हो-हुर्रर्र कर रही थी।

जैसे ही मैं सडक के लिए मुडा, एक पेड के नीचे गुड्डू बैठा हुआ नजर आया।

उसके सामने कुछ दूर—जहा महापालिका का बमपुलिस और कूडे-कचरे का ढेर था, उसकी बगल मे कुछ बनजारे डेरा-डण्डा डाले हुए थे और उनके बच्चे गोलियाँ खेल रहे थे। उनके पास ही रस्सी मे बँधे बन्दरो के दो जोडे थे और गुड्डू की निगाह बन्दरो पर जमी थी।

"तू ? तू इस समय यहाँ क्या कर रहा है ?"

वह चौंककर खडा हो गया।

"यहाँ क्यो बैठा है तू ?"

"और क्या करूँ ?" वह बिना सिर उठाये धीरे से बोला।

मैंने उसे गोद मे उठा लिया, "बेटे ! तू बुजुर्गो की तरह क्यो बोल रहा है ? ऐ ?"

"पापा, आप बच्चो की तरह क्यो लडते हैं ? ऐ ?" एकदम मेरी आवाज की—टोन की नकल करते हुए और मुझे बिराते हुए गुड्डू बोला। पहले तो मैं सकपकाया, फिर उसे चूम लिया, "बदमाश कही के !" और हम दोनो एकसाथ हँस पडे—खिल-

खिलाकर !

"अच्छा, एक काम कर ! घर जा और अम्मा से कह दे कि पापा स्टेशन गये है बनारस के लिए टिकट लेने ! हम परसों सुबह की गाडी से वापस निकल चलेंगे।"

मेरे कहते-कहते वह खरगोश की तरह मेरी बाँहों से सरका और घर की ओर भागा !

जब चार बजे स्टेशन से लौटा तो सानू और रेखा आ चुके थे।

"अचानक क्या हो गया आप लोगो को ? कार्यक्रम तो अभी दस पन्द्रह दिन का था ? कोई तकलीफ तो नही थी यहाँ क्यों डार्लिंग ?" सानू ने सिगरेट जलाते हुए रेखा को देखा।

रेखा पत्नी से बोली, "नहीं, यह नही होगा दीदी ! आपकी एक भी न सुनी जायेगी !"

वे जिस पोशाक मे आये थे, उसी मे 'डाइनिंग हॉल' मे बठे थे। उनके चेहरे पर चिन्ता और उदासी थी।

इसमें सन्देह नही कि वे अपना हर्ज करके भी हमारे लिए जितना कर सकते थे, कर रहे थे। रेखा मुवक्किलो से जितनी जल्दी छुट्टी पा सकती थी, पा लेती थी और सारा समय मेरी पत्नी के साथ बिताती थी। जैसा कि पता चला, इसके पहले वह किचेन मे कभी नहीं जाती थी लेकिन हमारी खातिर वह 'कुक' को निर्देश ही नही देती थी, एक-आध घण्टा वहाँ मेहनत भी

करती थी। 'डिशेज' के बारे में उसने इतनी जानकारी हासिल कर ली थी कि पत्नी को स्वय अचम्भा होता था। एक बार तो उसने जबरन पत्नी को 'नाइटी' पहना दी और वे रात भर सो नही सकी। उन्हे लगता था कि व ऊपर से लेकर नीचे तक नगी हैं।

"दीदी जैसी थी, वैसी ही रह गयी।" उसने सुबह कहा और हम सारे लोग देर तक मजा लेते रहे।

सानू तो अक्सर मेरे लिए अपना ऑफिस पहले ही छोड देता। रोज किसी-न किसी के घर हम निमन्त्रित होते—कभी 'ब्रेकफास्ट' पर, कभी 'लच' पर, कभी 'डिनर' पर। 'प्रेज़ेटस' जो मिला करते, सो अलग। मै साधारण आदमी नही, एक महत्त्वपूण अफसर का साढू भाई था। इन जगहो पर मैं अपने सूफियाना कपडो से काम चला ले जाता, लेकिन श्रीमतीजी और बच्चो का काम रेखा की साडियो और दीपू के सूटो के बगैर न चलता। मेरी परेशानी यह थी कि रोज बीयर पीने और मुर्गा खाने के बावजूद मेरी सेहत ज्यो-की त्यो थी। न वज़न बढ रहा था, न चर्बी चढ रही थी।

"यह मनमानी है, मेरे रहते यह नही चलेगा। टिकट वापस करने के लिए कल आदमी भेज दूगा।" उसने मेरी बात बगैर सुने कहा।

मैंने तरह-तरह के बहाने बनाकर यह साबित कर दिया कि परसो शाम तक घर पहुँचना कितना जरूरी है। फिर भी वह

अपनी जगह अड़ा रहा।

"ख़ैर, फ़िलहाल आप लोग एक घण्टे में तैयार हो जायें। बच्चे लोग भी! आज घाट की तरफ़ चलेंगे, वहाँ से क्लब, फिर मार्केट! और उधर ही आज चड्ढा के यहाँ डिनर है!" वह खड़ा हुआ और अपने कमरे में चला गया।

मैं जैसे ही कपड़े बदलकर बरामदे में आया कि पता नहीं किस तरफ़ से एक अधेड़ आदमी आया और मेरे पैर गिर पड़ा। मैं चौंककर पीछे हटा। वह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उसकी आँखें गीली थीं और वह मुस्कराने की कोशिश कर रहा था। उसके सामने के बाल उड़ गये थे। गाल की हड्डियाँ बेहद उभर आयी थीं जिन पर ज़बरदस्त मुहाँसों की घनी परछाइयाँ बनी हुई थीं। उसके नीचे के अगले चार दाँत नहीं थे और उनके बीच जीभ बड़े स्थिर भाव से पड़ी थी।

मैं ऐसे किसी आदमी से नहीं मिला था। मैंने याद करने की कोशिश की लेकिन बेकार!

"कौन हैं आप? किससे मिलना चाहते हैं?"

वह काँपते हुए बोला, "आप ही से!"

"मुझसे? कहाँ से आ रहे हैं आप?"

"साहब, धीरे धीरे बोलिए।" वह घबड़ाया हुआ था, "तकलीफ़ न हो तो थोड़ा उधर चलें।"

मैं परेशान हुआ और सोचते हुए पोर्टिको से आगे बढ़ गया।

"हाँ, अब कहिए!"

"सर ! किसी रामलाल की याद है आपको ?"

"कौन रामलाल ? क्या करता है ?"

"साब ! गोसपुर का रहनेवाला था और आपके साथ इण्टर तक पढा था।"

"ओह हो, वह रामलाल ! तो आप ही उसके चाचा हैं ! लेकिन चाचाजी, उसकी पढाई छुडवाकर आपने अच्छा नही किया था। जीनियस था वह ! कहा है आजकल ? पहले यह बताइए !"

उसे खुशी हुई कि मैं रामलाल को भूला नही हूँ। वह थोडा शरमाया, "साब, म ही रामलाल हूँ। "

"ए ? जरा फिर तो कहो ! कौन हो तुम ? रामलाल ! रामलाल मानीटर ! वही जिसकी खूबसूरती पर भरत बाबू साहब जान छिडक्ते थे ?" मैं चुप हो गया और उसे ध्यान से देखने लगा—पूरे चेहरे मे केवल आखें बता रही थी कि वह रामलाल रहा होगा। मैंने उसे खीचकर सीने से लगा लिया, "यार, तू ऐसा हो गया है ? और यही है ? इसी शहर मे ? क्या हो गया है तुझे ?"

उसने जल्दी से अपने को छुडा लिया और सहमकर पीछे हट गया, "मेरा घर वह है—इसके पीछेवाला। मुझे रिश्ते का पता था और आपके यहाँ आनेवाला था। लेकिन जगी से पता चला कि आप आनेवाले हैं। मैं आपको आने के रोज से ही देखता रहा हू।"

"तुम मिले क्या नहीं ?" मैंने उसका हाथ अपनी तरफ खींचा, "और पैर क्यों छुआ ?"

"भैया, यह न पूछिए। आपसे एक जरूरी काम है—बेहद जरूरी !"

"कहो, क्या बात है ? और यह भैया-बाबू छोड़ो ! सीधे नाम लो—जद्दू !"

"यहाँ नहीं, उधर चलिए ! उधर !" वह अकेले ही चल पड़ा।

"सुनो तो ! अभी हम एक जगह जाना है। दावत पर ! इसलिए यहीं बताओ ! बोलो !" मैंने उसका कन्धा पकड़ा और उसके साथ आगे बढ़ गया।

वह कुछ देर मुँह बाये मेरी ओर ताकता रहा, "भाई जान, आप चाहेंगे—अगर आप चाह देंगे तो सब ठीक हो जायेगा। सा ऽऽ ब !"

वह सानू के दरवाज़े की ओर देखने लगा।

"अजीब अहमक आदमी हो यार, बात तो बताओ !" मैं झल्ला गया।

"भाई जान ! बताऊँ मैं ? संक्षेप में यह कि साहब ने मुझे सस्पेंड कर दिया है। आप आप विश्वास करें, मेरी कोई गलती नहीं थी।" वह पहले गिड़गिड़ाया, फिर रोने लगा।

मुझ काटो तो खून नहीं। थोड़ी देर खामोश रहा, कुछ कहते नहीं बना।

"क्यो ? पहले आसू पोछो, और सुनो, ठीक से बात करो ! सानू के ही आफिस मे काम करते हो ?"

उसने सिर हिलाया, "कागज अभी साहब के ही पास है, ऊपर नही भेजा है !"

"ऐसा क्यो किया उन्होने ?"

"आप यह मत कहिएगा कि मैंने आपको बताया है।"

"अरे, जो पहले पूछते है, वह बताओ। ऐसा क्यो किया ?"

"भाई साहब, मेरे पाच बच्चे है। बीवी का पिछले साल ही इन्तकाल हो गया। छोटा भाई भी यही है, मेरे साथ। अभी किसी को नही बताया है। सब समझते है, छुट्टी पर चल रहा हूँ। गाव पर भी चाचा को खबर नही दी है। और मेरी कोई गलती नही, साहब ने सस्पेंड कर दिया है। बिला वजह। उधर चलिए। साहब का ड्राइवर देख रहा है। वह समझ गया होगा ।"

सानू का ड्राइवर सागा गाडी की बगल मे ईंट पर बठकर बीडी पी रहा था और कभी-कभी हमे देख लेता था।

मैं आगे बढ गया और पेड की उभरी हुई जड पर बैठकर चिट लिखने लगा।

"तो जद्दू भैया, मैं घूसखोर हूँ यही कहा साहब ने, लेकिन कौन घूसखोर नही है ? क्या मैंने नया लिया था ? वे नहीं जानते थे ? मैं उनका अदली था—उनसे भेट कराने या मिलवाने के पाच रुपये या दस रुपये ! जसा असामी हो ! बस ! वे

मजे मे जानते थे। मेरी गलती केवल इतनी ही है कि मैंने उनके भानजे से ले लिया! मुझे क्या मालूम कि कौन भानजा है, कौन मामा? बस सस्पेंड! मैंने माफी माँगी, गिडगिडाया, कसम खायी ।'

वह जब तक बोलता रहा, मैंने सानू के नाम कागज लिख लिया, "बहुत जरूरी काम से अचानक शहर जाना पड रहा है, एक दोस्त के पास। अगर रात मे न आ सकूँ तो बुरा न मानना। हाँ, मेरी इस हरकत के लिए माफ करना और सोना तथा बच्चो को बता देना!"

मैंने ड्राइवर को चिट दिया और रामलाल के साथ हो लिया।

मैं रात नही लौटा!

दिन मे भी नही लौटा!

लौटा शाम आठ बजे। और इस बात का मुझे कोई दुख नही था। दुख क्या, बल्कि खुशी थी! इसलिए कि कल हमे शहर छोड देना था और यह इस शहर की आखिरी शाम थी।

आसमान मे जो पहले तीन दिनो से बादल छाये थे, आज दोपहर के बाद से ही बरसने शुरू हो गये थे। शुरू मे एक घण्टा जमकर बारिश हुई थी—मौसम की पहली बारिश और इस समय फीसियाँ पड रही थी।

मैं पूरी तरह भीग गया था बल्कि कहिए कि बुरी तरह—लेकिन मजा आ रहा था। दिमाग चिन्ता से भले भरा रहा हो, लेकिन हर अग मे गुदगुदी हो रही थी। आते समय अपने को बचा सकता था, लेकिन फिसलकर गिरने की जब-जब नौबत आयी, गिर जाने दिया। यह अच्छा ही लगा।

बरामदे मे ही सागा ने बता दिया कि साहब ने मेरे लिए आज छुट्टी ले रखी थी। वह पूरे दिन घर पर रहे और सुबह से मेरा इन्तजार करते रहे। मैंने आहिस्ते दरवाजा खोला और अन्दर दाखिल हो गया।

मैं भीगे कपडो मे लथपथ अपने कमरे मे पहुँचा और किवाड के पास थम गया। फश पर कार्पेट थी। मेरी चप्पल—यही नही कि कीचड मे सन गयी थी बल्कि टूट भी गयी थी। मैं थोडी देर वही खडा रहा—इतनी दूरी रखते हुए कि कही कपडो और शरीर से टपकनेवाले पानी से कार्पेट खराब न हो जाय।

बच्चे सो गये थे। पत्नी की पीठ दरवाजे की तरफ थी। कमरा साफ-सुथरा और सलीके का लग रहा था। वे सारे सामान जो बिखरे पडे थे, शायद सूटकेसो मे रखे जा चुके थे और मेरी लुगी तकिया पर तह करके रख दी गयी थी।

मैंने चैन की सास ली कि लोग सो गये हैं।

"कल से कहा गायब हो ?" भारी आवाज मे पत्नी बोली।

मैंने चुपके से चप्पल खिसकायी, पजे के बल पलग के पास पहुँचा, लुगी ली और अपनी जगह आ गया।

पत्नी उतान हुई और उन्होने मेरी ओर देखा—बडी ही निर्जीव और मरी आखो से। मैं काप उठा—उनकी पलके सूजी थी, अन्दर के कोए लाल थे। इसका मतलब था कि वे दिन मे काफी रो चुकी थी।

"तुम्हारी तबीयत तो ठीक है ?"

"तुम थे कहा कल से ?" उन्होने जोर देकर दुहराया।

"बस इतना ही कह सकता हूँ कि" कहने के पहले मैंने उनकी ओर देखा, "कि रण्डीबाजी नही कर रहा था।"

उन्होने मुझे देखा और फफक पडी। वे उठ बैठी और घुटनो के बीच मुह छिपा लिया, फिर पेट के बल फैल गयी। बहुत जब्त करने के बावजूद उनके गले से हिचकी फूट पडी और पीठ रह-रहकर हिलने लगी। मैंने तो मजाक किया था जिसे वे भी समझती थी।

मैं उनके पास सरक गया।

"इस तरह मुझे अकेले छोडकर तुम कहा चले गये थे ?"

"क्या बात करती हो ? मैं रहकर भी क्या कर रहा था सिवा झगडे के!"

उन्होने बच्चे की तरह मेरे सीने पर दो तीन मुक्के मारे और गोद मे सिर रखकर रोने लगी, "यहा से ले चलो! अभी चलो एक एक पल पहाड जैसा लग रहा है, दम घुट रहा है मेरा! मैं यहाँ किस तरह रही हू इसे मैं ही जानती हूँ, लेकिन अब नही। नही"

"अरे धीरे-धीरे बोलो ! धीरे-धीरे ! लेकिन बात क्या हुई ?"

"बात कुछ नही है ! बात क्या हो सकती है ? लेकिन तुम मुझसे अच्छी तरह समझ सकते हो। समझ रहे हो तुम !"

"हूँ !" मैं थोडा गम्भीर हो गया और उनके सिर पर हाथ फेरता रहा।

इस बीच पत्नी की आवाज सुनकर गुड्डू बैठ गया था। उसे खासी आनी शुरू हुई थी और खाँसते-खाँसते उठ बैठा था। वह आखें मिचमिचाते हुए कभी मुझे देखता, कभी मा को।

"क्या है बेटे ! सो जा !" मैने पुचकारा।

पत्नी अलग हट गयी थी और चेहरा दूसरी ओर घुमा लिया था।

"पापा, आज मने दीपू को दो बार पटका था। धायँ-धायँ। वह देखने मे ही लम्बा और मोटा है। दम नही है उसमे।" वह बडे उत्साह मे था।

"ठीक है ! ठीक है ! बहादुर हो तुम सो जा !" मैने उसके सिर को दबाकर तकिये पर रख दिया। उसने भी आँखें बद कर ली।

"आज सवेरे से ही घर की याद आ रही है।" वे फिर हिचकिया लेने लगी, "छत से पानी टपकता होगा, नीचेवाले कमरे मे। पिछली बार मीटर उड गया था। हम यहा हैं। कौन जाने मीटर उड गया हो और करेंट दीवार मे उतर आया हो !

आशा, कुसुम, गीता बड़ी बदमाश है, उनमे से किसी को कुछ हो गया तो ! मैं गरमी-भर चिल्लाती रही कि बारिश के पहले मरम्मत करवा दो, मरम्मत करवा दो, लेकिन कौन सुनता है मेरी ? आते समय दाल खत्म हो रही थी। गेहूँ तो अभी दो-चार रोज के लिए होगा। पता नही, अब भी इन सबो का ऐडमिशन उसमे होगा या नही। कहा था, महीने भर के लिए ही सही, ट्यूटर तो लगवा दो। यह किया नही तुम मास्टरी छोड क्यो नही देते ? आज सुबह डाली बता रही थी सानू के क्लर्क के बारे मे। उसके बेटे सेंट स्टीफेंस मे पढते ह और और "

"च् च् च्, यह तो बहुत बुरा हुआ ! लगता है, मेरी एक दिन की गैरहाजिरी मे ढेर-सारी परशानियो और समस्याओ ने तुम पर धावा बोल दिया। देखे तो कहाँ कहाँ चोटे आयी हैं तुम्हे ?" दुखी स्वर मे मुह बनाकर मैं उनका आचल हटाने लगा !

"अरे ! यह क्या कर रहे हो ? हर समय मजाक !" वे दूर खिसक गयी।

हवा के झोंके आ रहे थे और खिडकी के शीशो पर पानी की बूद सरक रही थी। 'ड्राइग रूम' से रडियो सीलोन से पुरानी फिल्मो के कुछ गीत आ रहे थे और घर मे खामोशी थी। रेखा पडोस मे कही अपने सीनियर वकील के यहा गयी थी—सलाह-मशविरा करन। हॉल मे दीपू और स्वीटी 'वड बिल्डिग' का खेल खेल रह थे, लिहाजा बीच-बीच मे अग्रेजी का कोई हर्फ उछलकर

रोशनदान से हमारे कमरे मे आ गिरता।

"देखो डियर ! अपनी भाषा मे पिछले दिनो एक भवभूती हो गये है जिनका नाम अज्ञेय है। उन्होंने वडी तपस्या के बाद जीने का एक नुस्खा ईजाद किया कि दुख हो, परेशानी हो, चिन्ता हो, चाहे जैसी हाय-हाय हो—उसके आगे समर्पण कर दो, घुटने टेक दो ! जव तक लडोगे, परेशान और दुखी होते चले जाओगे, इसलिए हे प्रिये ! कुछ सोचो मत ! चारो खाने चित्त हो जाओ, यह जरूर है कि अभी नौ ही बज रहा है, लेकिन बच्चे सो गये हैं और इस कमरे मे कोई नही आनेवाला है !"

पत्नी उखडकर खडी हो गयी—जाहिर था कि मेरा मजाक उन्हे नागवार लगा है।

'सुनो, भडको मत ! दूसरो के सुख से अपने को दुखी मत करो। वरना सारी जिन्दगी रोते गुजरेगी मेरी जान ! हमारे सोचने की चीज यह नही है कि किसका लडका विलायत पढ रहा है, बल्कि दूसरी है। देखो हम घर पर खुश नहीं थे। नही थे न ! एक ही जगह, एक ही जैसे दिन और रातें, रोज-रोज का लडाई झगडा, असन्तोप और ऊब और डाट डपट !

तो हम लोगो ने सोचा कि कुछ दिनो के लिए इस जिन्दगी को बदले—नयी करे—थोडा हँसें—गाये। आधी से ज्यादा जिन्दगी इसी रोने कलपने मे चली गयी, लेकिन अब जो थोडी-सी रह गयी है इसे मूछो पर ताव देते हुए वितायें ! न किसी का लेना और न किसी का देना ! दुनिया फोद पर चढे !

रह गय ये अपने लौण्डे और लडकियां, सालो के बाप का कर्ज नहीं खाया है। जितना होगा, करेंगे, नहीं होगा—नहीं करेंगे। जितना करेंगे, उसके आधार पर रास्ता खुद चुनें! मैं गलत तो नहीं कह रहा हूँ? और जब सारा जमाना ही परेशान है तो ये भी परेशान हो—हुआ करें। लेकिन नहीं हुआ ऐसा! वही चिन्ता, वही समस्याएँ, वही आटा-दाल, वही बरसात और छत—सब हमसे पहले ही इस कमरे में पहुँच आये! और लगता यह है कि आगे भी जहां-जहां जायेंगे, ये हमसे पहले नहीं, तो हमारे साथ साथ चलेंगे। तो ऐसा क्या है? क्यों हो रहा है—हम सोचना यह है!"

इस लम्बे बयान पर—'प्रतिभा के इस भयानक विस्फोट' पर—मैं चकित हुआ, लगा कि घोर अँधेरे में मैंने जो तीली जलायी थी, वह बढते-बढते मशाल हो गयी है और वह मशाल अब मैंने पत्नी के हाथ में दे दी है और वे उसे लेकर भादों की रात भी खे सकती हैं। लेकिन उन्होंने मुझे ऐसे देखा जैसे मैं यह बकवास किसी नशे में कर रहा हूँ और अगर नशे में नहीं हूँ तब तो और भी बुरा है! इतना तो साफ लगा कि अब उनकी सारी उम्मीद ढह गयी हैं और भगवान ही मालिक है इस परिवार का!

"अरे भाई साहब! क्या कर रहे हैं इतनी देर से? आयेंगे भी?" दूर से सानू की आवाज सुनायी पडी।

मैं जब लगी पर कमीज पहनने लगा तो वे माथे को हाथों

मे लेकर बैठ गयी।

अमलतास, और खजूर और गुलमुहर और पपीते के नन्हे-नन्हे दरख्तो से घिरी छाती-भर ऊँचाई की चारदीवारी और उसके अन्दर आधे हिस्से मे यह दुमजिली इमारत और आधे म पलस्तर किया हुआ टेनिस कोर्ट। इस कोट के बीच मे दो स्टील की कुर्सिया ह। इनके आगे शीशा मढा हुआ दिल के आकार का एक मेज। मेज पर बीयर की—गोवा की मशहूर बीयर आर्लेम की चार बोतलें रखी हैं और एक खाली गिलास। दूसरी गिलास सानू के हाथ मे है।

पूरा टेनिस कोट मर्करी की रोशनी मे है और उस रोशनी मे हवा के चौतरफे झोके मे उडती हुई हवा की फुहियाँ पतगो-जैसी लग रही हैं।

"हाय! बरखुरदार, आपका जवाब नही। खैर, आइए!" उसने उठकर हाथ बढाया।

वह भीग चुका था। उसके बाल माथे पर चिपक गये थे और उनसे पानी की बूद टपक रही थी।

"तो आज घर पर ही पियेंगे, खायेंगे और रात-भर! अगर इसी तरह बारिश होती रही तो रात भर! और आसमान देखिए, जरूर होगी।" उसका मूड बदला हुआ था और वह काफी खुश था।

मुझे डर था कि वह नाराज होगा और शिकायतों के साथ मिलेगा, लेकिन जिस सहज भाव से मिला, मुझे सन्तोष हुआ और मैं सामनेवाली कुर्सी पर बैठ गया।

"ऐसे, आपको फासी की सजा भी दे दी जाय तो उसे कम समझिए। पता है, आपने किस हद तक बोर किया है हमें ?" उसने गिलास मेरे हाथ में पकडायी और अपनी गिलास उठाकर चिल्लाया—"चीयर्स !"

"ठीक है, मैं पियूगा, लेकिन एक शर्त पर !"

"जोये भाई साहब ! आपकी सारी शर्तें मजूर ! और सारी क्या, एक ही तो शर्त रखी आपने और लीजिए, वह भी मजूर ! कल से रामलाल ऑफिस आयेगा, बस न ? लेकिन हाँ, उससे दो बातें कह दें। नम्बर एक—रिश्वत की भी एक मर्यादा होती है। एक रुपये दो रुपये, यह रिश्वत है ? बदनाम भी होओ और कोई बात भी न बने। नम्बर दो—ऐसा करते समय आदमी पहचानो। मौका-बेमौका भी देखो सिर्फ पैसा ही नहीं। समझा ? वरना तुम्हारा तो कुछ न होगा, अपना कबाड़ा हो जायेगा !"

इस तरह पीने का यह मेरा पहला मौका था, जबकि किसी की चोरी नहीं—खुलेआम बारिश में भीगते हुए बीयर पी जा रही थी और हमारे चारों ओर पत्तियों पर बूंदों की रिमझिम का सगीत बज रहा था।

"अरे सागा ! कोई सुन रहा है ? उसे इधर भेजो !"

तो भाई साहब ! हमारे ऑफिस पर इन दिनो जाँच-कमीशन बैठा है। एक बहुत बडे नेताजी हैं। उन्होंने मुझसे गलत काम लेना चाहा था और वह भी मुफ्त ! मैंने इनकार किया और उन्होने कमीशन बिठवा दिया। अब यही देखिए, मैंने क्यो इनकार किया ? सेठ और नेता—एक फर्क है इनमे। सेठ पैसा देता है और काम लेता है और कभी ज़बान नही खोलता। नेता लोग काम भी गलत करवाते हैं—अपनी नेतागिरी के रौब मे। कभी कभी पैसा भी देते हैं लेकिन हल्ला ऊपर से कि देश मे घूसखोरी बढ रही है, बेईमानी और भ्रष्टाचार बढ रहा है, जब तक इन्हे न रोका जायेगा देश की तरक्की नही हो सकेगी ! क्यो ? क्यो ऐसा करते हैं ये ? क्योकि इन्हे चुनाव भी लडना पडता है। विश्वास कीजिए, सेठ इनसे लाख दर्जे अच्छे होते हैं।"

सानू ने दूसरी बोतल खोली, गिलास भरी और आगे कहा, "और एक बात बताये आपको ! एक अफसर पर नेता का नाराज़ होना अच्छा है। जनता की नज़र मे इसका अर्थ होता है कि अफसर जरूर ईमानदार होगा—सख्त होगा ! और ये जाँच-कमीशन खाना पूरी है यह ! एक तो जो सज्जन जाँच करने आये हैं वे भी अफसर रहे हैं और सारे अफसरो की नेताओ के बारे मे एक-जैसी राय होती है। वे जानते हैं कि जाँच क्यो करवायी जा रही है। दूसरे, इन पधारे हुए सज्जन को मालूम हो गया है कि ये अपने यहाँ जिस अफसर के हलके मे आते हैं, उनके इनकम टैक्स का मामला देखनेवाला शख्स मेरे भै

है—यही नही, गहरा दोस्त भी है। देखा न, चीजें इस कदर एक मे एक उलझी हुई हैं कि अगर आप तोप भी लगा दे तो या तो ऐन मौके पर गोला नही छूटेगा या ट्रिगर म खराबी आ जायेगी। रुकिए ज़रा ”

इस बीच सागा आ गया था। सानू ने उचक्कर पतलून की पिछली जेब मे हाथ डाला और पर्स बाहर निकाला, "ये लो, इससे एक पेटी आर्लेम। और यह और लो, 'शीशमहल' चले जाना और मैनेजर से मेरा नाम बोल देना। उसे फोन कर दिया था। नान, चिकेन, चीज पकौड़ा—जो कुछ दे, ले आना। अपने साथ कोमल को भी ले ला!"

उसने उसे सौ सौ के कुछ नोट दिये और पर्स जेब मे ठूस ली।

यह अजीब तरह का मौसम। झीसियाँ उड रही थी, हम पानी से तर-बतर थे। बीच बीच मे बिजली कौंध रही थी और हम पर धीरे धीरे नशा छा रहा था।

"तो भाई साहब। आप जानते नही और जितना जानते हैं, वह नाकाफी है। मसलन, आप मेरे बारे मे क्या जानते हैं? आप समझते होगे कि मैं भी बेईमान हूँ क्योकि अफसर हूँ। लेकिन इस पूरे ज़िले मे, ज़िले मे ही क्यो, प्रान्त मे किसी से भी मेरे बारे मे पूछ देखिए। लोग रुह से काँपते हैं। मेरी सख्ती और ईमानदारी का डका पिट चुका है। लेकिन मैं जानता हूँ कि क्या हूँ? अभी परसो मेरा नाम छपा था। और उस अखबार

मे जो हिन्दी का सबसे लोकप्रिय और सबसे अधिक पढा जाने-वाला अखबार है—उसमे। कई बार फोटो छप चुकी है। आपने खुद अपनी आखो देखा है। क्या कहिएगा इस मुल्क को भाई साहब! जिस अखबार के मालिक से अब तक एक लाख ऐंठ चुका हूँ—दस-बीस हज़ार नही, पूरे एक लाख—वही बार-बार अपने अखबार मे मेरी ईमानदारी, सेवा, निष्ठा, त्याग और कर्तव्यभावना की तारीफ के पुल बाधता है। बताने की ज़रूरत नही कि वह क्यो बाँधता है। और इसमे भी मजेदार बात यह कि उसे एक ईमानदार और निर्भीक पत्रकार के रूप मे पद्मश्री भी मिल चुकी है! अभी पिछले साल! जी हा, यह मैं नशे मे नही बोल रहा हूँ! गलत मत समझिएगा! यह जरूर है कि पहली बार बोल रहा हूँ और वह भी आपसे! क्योकि आपसे मुझे कोई खतरा नही है! क्यो नही है? एक मिनट ''

वह कोट के कोने मे चला गया और थोडी देर बाद लौट आया।

सानू मेरे आगे पहली बार खुला था और यह मेरे लिए नया अनुभव था। आते ही उसने अगली बोतल उठायी—"भाई साहब, बीयर से उम्दा कोई चीज़ नही। पीजिए और पेशाब कीजिए। बात खतम, पेट खाली! तो मैंने कहा कि आपसे कोई खतरा नही है। इसलिए नही कि आप रिश्तेदार हैं बल्कि इस-लिए कि आप कवी है, लेखक हैं। कागज़-कलम उठाते ह, लिखते हैं और सोचते हैं कि तहलका मच जायेगा! लिखते ह कि ज़्यादा

लोग गरीब है, थोडे लोग अमीर हैं। वे अमीर इसलिए हैं कि ज्यादा लोग गरीब है या लोग गरीब इसलिए है कि थोडे लोग अमीर है। ऐसा ही कुछ! और यह भी कि देश के अफसर निकम्मे है, भ्रष्ट हैं। नेता बेईमान और अनैतिक हैं। और कहते किससे हैं—हमसे थोडे बडे अफसर से, उससे जिसका माग ठाट-बाट हमारी रिश्वत पर खडा है। थोडे बडे नेता या मन्त्री से, जो दस गैरकानूनी और नाजायज काम हमसे करवा चुका है! आप उससे कहते हैं जो सत्ता मे है, जिसके पास अधिकार है और जिसने आपको ऐसा कहने और लिखने का अधिकार दिया है। लेकिन मैं आपसे पूछूं कि क्या आपने भी उसे सुनने का अधिकार दिया है? आप कहा मे देगे? आपके पास देने को है ही क्या? यह तो हुई एक बात। दूसरी यह कि मुझसे पूछिए तो आपके ऐसा लिखने का कोई अर्थ ही नही होता। जब तक आप प्वाइट आउट न कर कि यह शख्स भ्रष्ट है। क्यो? क्योकि 'थोडे' और 'ज्यादा' का कोई अर्थ नही होता। 'सामान्य' का कोई मतलब नही होता। है न! फिर भी, चलिए, मान लिया कि आपने एक ऐसा वक्तव्य जारी किया!

"अब देखिये! आपके इस वक्तव्य के बाद किसी भी अफसर किसी भी नेता को पकड लिया जाय और कहा जाय कि चूकि ऐसा लिखा है और तुम भी एक अफसर हो, इसलिए बेई मान हो अत नौकरी से सस्पड। अब चलिए कचहरी। आपके पास क्या सबूत कि उसने बेईमानी की है? सबूत आपके—मैं

कहता हूँ कि आपके वस की वात है ही नही । आप क्या खाकर सबूत दे सकते है ? अरे, औरो को छोडिए मुझे आप सबसे अधिक जानते है—मुझे ही लीजिए । आप कहा से सिद्ध करेंगे ? सिवा इसके कि आप घर के अन्दर के सामान देखे और समझे कि यह वेईमानी है। खैर, आगे चलिए अब ! अब वह कचहरी से छूट गया ! और छूटेगा भी क्यो नही ? आखिर कानून भी तो उसी ने बनाया है जिसे आप वेईमान और अनैतिक कह चुके हैं ! आप समझते है कि वह इतनी आसानी से अपना गला आपके पजे मे देने का कानून वनायेगा ! अपने से अपने पैर मे कुल्हाड़ा मारेगा ! तो कचहरी से छूट गया और वाइज्जत। मैं कहता हूँ कि वाइज्जत । इसका नतीजा क्या हो सकता है, जानते हैं आप ? इसका अर्थ हुआ कि आप झूठे हैं, फरेबी है, आपने एक शरीफ आदमी की इज्जत पर कीचड उछाला है, उसका अपमान किया है, क्यो न आप पर मान हानि का मुकदमा दायर कर दिया जाय ?

"और मुकदमा हो गया । आप हार गये और आप पर पाच हजार का जुर्माना हो गया । आप कहा जायेंगे ? और मान लीजिए, उसकी इज्जत की कीमत कही पचास हजार से ज्यादा हुई तव ? तव तो जेल मे सडिए या कुर्की-नीलामी कराइए। "

इसी दौरान वीयर की पेटी के साथ सागा और खाने का सामान लिये कोमल आ गये । सानू ने बोतले फ्रिज मे रखवायी और उससे 'अम्ब्रेला' लाने को कहा। जव रग बिरगा अम्ब्रेला हमारे

ऊपर लगा दिया गया तो उसने खाने के पैकेट खोले, "भाई साहब, आज रतजगा होगा! गम भर पियेंगे मगर धीरे धीरे। लेकिन हाँ, मैं बीयर के सिवा और नहीं लेता। कल छुट्टी भी है। न होती तब भी छुट्टी लेता आपके लिए। मुझे लग रहा है कि आप बोर हो रहे थे और दीदी भी उखड़ी उखड़ी-सी थीं तो आज रात-भर चलेगा—एक-एक घूंट, चलाते चलिए। ऐसे आप चाहें तो मेरे पास स्कॉच भी है। लेकिन पहले कुछ खा लें!"

उसने पहले तो मुर्गे को देखकर मुह बनाया, लेकिन तुरन्त ही उसके सफेद दांत चमक उठे, "अबे कोमल! जनाना लोग क्या कर रहा है? इसमें से आधा उठा ले जा! बोल दे कि आज साब लोग उधर में नहीं खायेगा, यहीं पिकनिक मनायेगा।"

"तो भाई साहब! मैं कह रहा था कि आप इतना लिखते हैं, आप ही क्यों—आप-जैसे सैकड़ों लोग लिखते हैं लेकिन कोई पत्ता हिलता है? कुछ हिलाया है आप लोगों ने?" उसने सिगरेट की राख झाड़ी और मेरी आँखों में देखा।

फुहियाँ तेज और मद्धिम हो रही थीं। हवा थम गयी थी। रेखा दिन-भर की थकी हारी होने के कारण सोने चली गयी थी और पन्नी दरवाजे के पास आ खड़ी हुई थी। वे हमें देख रही थीं या सानू को सुन रही थीं। मैंने जाकर उन्हें सोने को

इशारा किया लेकिन वे खडी रही।

हम लोग भी खा चुके थे और हड्डियाँ मेज पर बिखरी थी। साागा तीन-चार और बोतले लाकर मेज़ के निचले खाने मे रख गया था। मुझ पर अच्छा खासा नशा था। सानू ने बताया था कि अगर क्रॉस न करें तो रात-भर इसी तरह बैठे रह सकते हैं कही कुछ नही होगा। वह बोले जा रहा था और उसकी कुछ बात मेरे कानो मे पड रही थी कभी-कभी समझ मे बिल्कुल नही आ रही थी। इसके बावजूद एक बात मेरी समझ मे आ रही थी कि इतनी बोतले पीने के बाद भी वह अनगल और निरथक नही हो रहा था। उसके सारे बयानो मे एक सिल-सिला था और वह कही से नही टूट रहा था।

"खैर, मैं अपने बारे मे बात कर रहा था", उसने गिलास उठायी और एक छोटा घूट लिया, "रेखा वकालत करती है। क्यो करती है, जानते हैं आप ? इसके दुहरे कारण है। गौर से सुनिए ! एक तो मेरी वजह से उसे क्लायट मिल जाते है और आमदनी होती है। दूसरे, वह बाहरी आमदनी के लिए आड का काम करती है क्योकि उसकी वकालत से कोई भी समझ सकता है कि घर मे जो कुछ है, अकेले मेरी कमाई का नही है। देखा चमत्कार आपने ! इसका अर्थ है कि वह दो स्रोतो से आमदनी करती है—उसे छिपाकर भी और बाहर से लाकर भी। यानी एक ही क्लायट से मै भी लेता हूँ और वह भी लेती है। मैं आयकर की चोरी का इल्जाम लगाकर लेता हूँ और वह उस

इल्जाम से बरी कराकर लेती है। तो सारा कुछ बडा पेचीदा है भाई साहब ! आप लोग यू (गिलास हिलाकर) हिलाते रहिए !"

"यह चलता रहेगा, आप जाइए ! सो रहिए !" मैंने पत्नी से कहा, जोर मे।

सानू ने ध्यान से दरवाजे की ओर देखा, "अरे दीदी ! आप जग रही है ? एसे, आप माफ करेंगी। सिफ रात-भर हम दोनो साथ है और सच कहिए तो मुद्दत के बाद आवारा होने की तबीयत हो आयी है।"

"मै कुछ कह रही हूँ क्या ?" पत्नी बोली, "इन्हे भी जितना पीना हो पी ले, इसके बाद तो मिलने से रही।"

"ऐसा न कहिए। न कहिए ऐसा, वरना मैं भाई साहब के लिए गाडी मे कई पीपे शराब लदवा सकता हूँ।" सानू मुझे देखकर हँसने लगा। और उसके बाद अचानक जैसे कोई बात याद आ गयी हा, उसने जो हँसना शुरू किया तो फिर हँसता ही रहा, यहाँ तक कि उसकी आँखा से पानी गिरने लगा।

"हैरत है मुझे ! दुख भी कम नही है। कभी-कभी मैं सोचना शुरू करता हूँ भाई साहब, तो लगता है, माथा फट जायेगा। मैं इसलिए कह रहा हूँ कि आप आ तो गये ह, आकर फँस भी गये ह और मैं जानता हूँ कि दुबारा आप मेरे यहा न आयगे। "

"नही, यह तो गलत कह रहे हो तुम !" मैंने गिलास खाली करते हुए कहा।

"गलत मै नही, आप कह रहे हैं। और इसे गलत नही,

झूठ कहना चाहिए। और जनाब, शराब का एक दस्तूर है
आप उसका पालन नही कर पा रहे हैं। पीनेवाला शख्स
चढ़ाकर भले बोले लेकिन झूठ नही बोलता और आप बोल
हैं। इसका मतलब है कि या तो यह शराब नही है या
आदमी नही हैं। बहरहाल, आप आदमी हों या न हों,
शराब है!" वह जोर से हँसा—"अगर आप झूठ नही बोल
हैं तो बताइए कृपया कि आते-ही-आते आपने वापसी का टि
क्यों खरीदा? दो दिन से गायब क्यों रहे? दीदी गुमसुम
हैं? हमारा घर बच्चों को रास क्यों नहीं आ रहा है? ज
हमने—मैं बहुत ईमानदारी से कहता हूँ भाई साहब कि
अपनी ओर से आप लोगों के लिए कुछ उठा नहीं रखा।
ऑफिस से छुट्टियाँ ली। अवसर समय से पहले काम निपट
और भाग आया। रेखा—जो कभी किचेन में पैर नहीं र
थी—खाने पकाती रही है और वह भी सानू के लिए
आपके लिए, दीदी के लिए! फिर भी आप लोगों का
टटा ही है!

"सुनिए! पहले मेरी बात तो पूरी हो लेने दीजिए
निवेदन करूँ कि इन बातों को आप सिर्फ अपने सन्दर्भ में
सोचिए! मैं एक बड़ी बात कह रहा हूँ—मुमकिन है आ
घटिया लगे। आप बाहर के आदमी हैं—बाहर से मेरा
लब—उतने निकट नहीं, जितने कुछ दूसरे हैं। उदाहर
लिए मेरे पिता को लीजिए। उन्होंने मुझे पढ़ाया लिखाया

इस लायक बनाया कि एक अफसर बनू । हालाकि सारा श्रय वे खुद लेते है गोया इस होने मे मेरी बुद्धि, मेहनत और वजीफो की कोई कीमत नही । फिर भी वे कहते है और मैं मान लेता हूँ । तो वे पढा-लिखा कर, अफसर बनाकर मुझसे क्या चाहते थे ? सीधी सी बात है कि चाहते थे—मैं सुखी होऊँ, रुपये पैसे कमाऊँ, किसी बात के लिए दूसरो के आगे हाथ न पसारूँ, उनकी और घर की इज्जत-आबरू बढाऊँ, उन्ह और माँ और भाइयो को आराम और सुविधाएँ दूँ ! यही न ? सुन रह हैं न मेरी बात ? मैं जब इस लायक हुआ तो बोला—पिता जी, अब चले आइए ! आराम से अपने दिन काटिए । मैंने उनके कमरे मे पखा लगवाया, मसहरी लगवायी, डनलप का गद्दा बिछवाया, कोने मे ठाकुरजी की मूर्ति रखवा दी, नौकर को हिदायत दी कि उन्ह कोई तकलीफ न हो । ड्राइवर से कहा—अगर वे शाम को घूमना चाहे तो पूछकर जहाँ कह, वहा घुमा लाओ ! मैं खुद दस-पन्द्रह मिनट के लिए रोज उनके पास बैठ लता था । लगता भी था मुझे कि वे बड खुश और सन्तुष्ट हैं। लेकिन दस पन्द्रह दिन बाद मै एक दिन आफिस से लौटा तो पता चला कि बिना किसी से कहे अपना डण्डकमण्डल उठाकर गाव चले गये । जाहिर था कि मुझे बुरा लगना और लगा भी । खैर, मैंने सोचा कि वृद्ध हुए, कोई बात नही । बहुत बुलाने पर एक बार माँ आयी । चार पाच दिन बाद वह भी कहने लगी—मुझे गाव पहुँचा दो । मैंने पूछा भी कि यहा क्या तक-

लीफ है ? तो कुछ नही, वस आराम ही आराम है। यहा की तारीफ करते हुए इतनी खुश हुई कि रोने लगी। फिर एक एक करके भाई आये और भाई साहव, आकर जो गये, इनमे से दुवारा कोई नही आया। यह नही कि आने का उसे मौका नही मिलता, वस यह कि आना नही चाहता! आप बता सकते है कि वे क्यो नही आना चाहते ? मै यह हरगिज नही मान सकता कि उन्हे मेरे सुख से चिढ है, क्योकि वे मुझमे यही चाहते थे।

"हाँ, वीच मे एक बात और रह गयी! रुकिए जरा।" उसने अपनी और मेरी गिलास भरी और आधी गिलास खत्म करने के वाद एक लम्बी डकार ली—"पिता जी से मैंने अनुमान लगाया कि शायद मैं इन लोगो से ढग से बात नही कर पाता हूँ—शायद ये लोग अधिक से अधिक मेरा साथ चाहते हैं, मुझसे बतियाना चाहते है। आप समझ सकते है कि यह कितना मुश्किल काम है! आप किस चीज के वारे मे उनसे वात करेंगे ? रूस और अमेरिका के वारे मे ? विदेश-नीति के वारे मे ? साहित्य या राजनीति के वारे मे ? फिल्म के बारे मे ? दुनिया या देश की किस समस्या के वारे मे आप उनसे वात कर सकते हैं ? लेकिन शायद वे ऐसा चाहते रहे हो। क्यो ? क्योकि मेरे यहा आधे घण्टे या पैंतालिस मिनट के लिए कोई आता था तो मैं उससे हँस हँसकर मस्ती से वात करता था। मगर भाई साहव, आधे घण्टे के लिए तो आप हँस सकते हैं लेकिन चौबीस घण्टे और वह भी उनके साथ जो आप से छोटे या वडे हो ? खर,

यह भी चले—मैंने अपने मे आदत डाली लेकिन कोई नतीजा नही ! अब यही देखिए, आप मे तो मैं खूब बातें करता रहा हू और वह भी हर टापिक पर ! मगर आप चले जायेंग और फिर दुबारा आने का नाम न लगे ! ऐसा क्या है ? आप समझाइए मुझे ! मैं अपने दिल से—देखिए, यहा से—कहता हूँ कि इस चीज को समझना चाहता हूँ। बस, अब आप वालगे आप बोलेंग और मैं सुनूगा ।"

"तुम समझना नही चाहते हो। समझाया भी जाये तो नही समझ सकते।'

"क्या बात करते ह भाई साहब ! वाह रे वाह ! आप जनता को समझाने का दावा करते हैं और मुझे नही समझा सकते !" उसने तुरन्त अपनी भौह चिटकी से मसली—"नहीं, मेरे कहने का मतलब यह था कि जनता आप की बात समझ सकती है और में नही ?"

"हाँ, जनता इसलिए समझ सकती है कि वह समझना चाहती है !" मैंने ज़ोर दिया !

"क्वी जी, माई रेस्पक्टड कवी जी, आप सीधे सीधे यह क्या नही कहते कि मैं इसलिए नही समझ सकता कि आप समझा ही नही सकते ! आप के पास घिसे-पिटे कुछ पारिभाषिक शब्द ह। आप कहेगे कि मेरा वग चरित्र वदल गया है। यही न ? आप डेढ हजार रुपये पाते हैं और पाई-पाई को दांत से पकडते हैं और आप का वग नही वदला और हजार रुपये मासिक पाने-

वाले मुझ गरीब का वर्ग बदल गया ? अगर मैं किसी भी हिक-मत से ऐशो-आराम की जिन्दगी जीना चाह रहा हूँ तो इसमे किसी के बाप का क्या ? और कौन नही चाह रहा है ? क्या मैं सौ रुपये की शराब पी रहा हूँ और आप अठन्नी के चोट्टा का रम पी रहे हैं ?"

"सानू, बेहतर हो, चुप हो जाओ ! बातें बन्द !" मैंने गिलास उलटकर रख दी।

"सॉरी भाई साहब !" उसने झुककर मेरी गिलास खड़ी कर दी—"बातें बन्द नही होंगी। और देखिए, अब तो फुहिया भी पड़ने लगी ! कोई कविता ही सुनाते आप। अब मैं नही बोलूँगा, आप सुनाइए। लेकिन उठा-पटकवाली नही, कोई दिलदार कविता। हाय हाय, क्या कहने ? कविता ए दिलदार नगर !"

"कवी और कविता-ए दिलदार नगर !" वह फुहियो की तरफ अपना चेहरा करके कुछ देर तक चुप रहा। "भाई साहब ! अब मेरा दोष नहीं। मैंने आपको मौका दिया और आप चुप रहे। हालाकि जो आदमी दूसरो को सिर्फ सुनता रहे और खुद चुप रहे, वह खतरनाक होता है। क्योंकि वह क्या सोच रहा है, यह पता नही चलता लेकिन कोई बात नही। मैं कुछ कहना चाहता हूँ—आप मुझे आज्ञा दें। आपको मालूम है, हम अफसरो मे

कवी का क्या मतलब है ? कवी का अर्थ है फटीचर, चूतिया, कामचोर, निठल्ला, चिरकुट बुरा न मानेंगे आप ! आपके लिए दिल मे बेहद इज्जत है और यह भी है कि यह अर्थ आप पर नही लागू होता। लेकिन जो मैंने कहा, वह सच है। इसके सिवा किसी दूसरे रूप मे मैं कवि को नही जानता। आप जानते है कि साल मे एक दो बार सम्मेलन मैं खुद करवाता हूँ—आफिसर्स क्लब की ओर से। इसके सिवा शहर मे जो भी आयोजन होते हैं, उसम बुलाया जाता हूँ और पाच ही मिनट के लिए सही—जाता जरूर हूँ। मैं सुनता हूँ उन्ह। वे कहते रहते हैं—तोड दो, फोड दो, उलट दो, आग लगा दो, जला दो, आसमान को नोच डालो, धरती को फोड डालो। हमारे क्लब मे वे अच्छे से अच्छा खाना खाते है, बढिया से बढिया शराब पीते है, लेकिन काफी नाराज दिखायी पडते है। इस दुनिया से, इस व्यवस्था से। हम पर उनकी बातो का असर तो नही पडता, लेकिन मजा जरूर आता है। कुछ देर के लिए जायका बदल जाता है। उनकी उत्तेजना हमे बडी दिलचस्प लगती है—उन्ह गम्भीरता से लेने की कभी हमे जरूरत नही महसूस होती। कभी-कभी लगता है कि वे एक अच्छे मनो-वैज्ञानिक केस हो सकते ह। खैर, इन बातो को छोडिए—शहर मे गोष्ठी के नाम पर, पत्र-पत्रिका के नाम पर, सस्था के नाम पर, दवा-दारू के नाम पर, अपील छपवाने के नाम पर कवि लोग चन्दे के लिए आते रहते हैं—बडे साहस के साथ, इस अहाते मे घुसते समय बडी हिम्मत से काम लेते है। और मैं

आप से झूठ नही वोलूगा—उन्हे चन्दे देता हूँ क्योकि उन्हे चन्दे देना मुझे अच्छा लगता है। क्योकि इससे मुझे अपने वडप्पन का एहसास होता है। सेठो के सम्मान से कवियो द्वारा सम्मान कही वडी चीज है—हर हालत मे वडी। आप यकीन कीजिए भाई साव, शुरू मे चन्दा देने से पहले मैं वेमतलव के काम करने के लिए उन्हे ऐसे डाँटता हूँ जैसे अपनी धोविन को, जैसे सब्जी-वाले को, यहाँ तक कि रहमत अली को। फिर भी वे मेरी इज्जत करते हैं और इतनी जितनी आपकी भी नही करते। माफ करियेगा, विश्वास न हो तो चलिए, किसी भी गोष्ठी मे चलिए। देखिए, लोग आपके स्वागत के लिए दौडते है या मेरे।"

मैंने अपनी गिलास उठायी और उठाते समय मुझे ऐसा लगा जैसे गिलास मेरे हाथ से छूटकर गिर जायेगी। सँभालते-सँभालते आधी गिलास वीयर मेरे घुटने पर गिर गयी। मैं शर्म से मुसकराया और गिलास मेज पर रख दी।

"रुकिए! रुकिए भाई साहव, उठाइए गिलास! उसे हाथ मे लीजिए!" उसने कहते-कहते जवरदस्ती गिलास मेरे हाथ मे पकडा दी।

"हाँ, गिलास कैसे टूटती है? मालूम है आपको?" उसने वडे रौव से मुझे देखा। "ऐसे!" और उसने वीयर से भरी अपनी गिलास दूर फर्श पर पटक दी। शीशे के टुकडे उछले और घिसटते हुए फैल गये।

"अव बताइए आप! गिलास कैसे टूटती है? आपके—

हाथ मे है वह ! हाँ कैसे ?" वह क्षण भर मेरी ओर देखता रहा।

"आप हद कर रहे हैं ! गिलास की तरफ मत देखिए और न उसकी खूबसूरती पर जाइए ! एसी गिलासें आती-जाती रहेंगी बस तोड़िए ! एक, दो, तीन !"

उसने झल्लाकर गिलास छीन ली और पूरी ताकत से उसे ऊपर उछाल दिया।

"हा तो अभी-अभी एक का घण्टा बजा है और हम यह नयी तारीख नये गिलास से शुरू करेंगे ! सागा ! ओ सागा !"

सागा दो गिलासो के साथ हाजिर हो गया। लगा कि गिलास के टूटने की आवाज़ के साथ ही उसने गिलासें निकाल रखी थी।

"हा तो नये गिलास और नयी तारीख और रहमत अली ! आपने पूछा नही कि यह रहमत अली क्या चीज है ? यह रहमत अली मेरा अदली है और शायर भी है ! मेरे मन मे आया था कि आपको बता दू, फिर सोचा, बताना ठीक नही है। पता नही, आप क्या सोचगे ? यह परसो की बात है—लच से थोडा पहले की। मेरे दफ्तर के आगे गैलरी मे थोडा शोरगुल जैसा हुआ। जब कोई ऐसा आदमी आता है जो रहमत को टिप नही दे पाता तो वह साहब से—यानी मुझसे नही मिलने देता। लाख चाहने पर भी नही मिलने देता। जब थोडी देर तक बहस-मुबाहिसा चलता रहा तो मैंने घटी बजायी। 'क्या बात है ?' मैंने पूछा ! उसन बताया कि एक सडियल-सा आदमी आया है जो आपसे मिलने की जिद कर रहा है। कहता है कि

साहब के घर एक लेखक आये हुए हैं कुछ जादू-फादू करके, उनसे मिलना है। मैंने कह दिया कि साहब के यहाँ ऐसे आलतू-फालतू लोग नहीं आते लेकिन वह अडा है।"

"बुलाओ, बुलाओ उसको।" मैंने उसे डाटा और भेजा तो पता चला कि वह रहमत को गालियाँ देता हुआ चला गया है। हालांकि देर तक मैं सोचता रहा कि कवि या लेखक वह भी रहा होगा और रहमत भी है, फिर उसने ऐसा क्यों किया? और देर तक सोचते रहने के बाद मैं इसी नतीजे पर पहुँचा भाई साहब! कि पैसा बड़ी चीज है। लोभ या लाभ अपने भाई को भी नहीं पहचानता—जाति तो दीगर चीज है!"

पानी बन्द हो गया था। उसने आसमान के अँधेरे में देखा जैसे उसकी समझ में न आ रहा हो कि यह साला बन्द क्यों हो गया?

"खैर छोड़िए! तो भाई साहब, रहमत अली शायर है और मेरा अदली है। फिर क्या तर्कशास्त्र का सहारा लेते हुए मैं यह नतीजा नहीं निकाल सकता कि जो भी शायर या कवि है, मेरा अदली है?"

-

मैंने जब अपना सिर उठाया तो उसे अपनी ओर घूरते हुए पाया। वह झुका था और सीधे मेरी आँखों में झाँक रहा था।

"क्या कहा आपने?" थोड़े इन्तज़ार के बाद वह मुसकुराकर बोला—"जी हाँ, कुछ कहा आपने?"

"नही तो! कुछ भी नही!" मैं चौंक-सा गया। सिर को झटका देकर गरदन सीधी की—"आपको वहम हो गया है!"

"रामलाल मॉनीटर! यही कहा आपने! क्या नही कहा था?" वह शरारत से अपनी गिलास मेज पर रखते हुए बोला!

मैं उखड गया। सचमुच, जहाँ तक मुझे याद है, मैंने ऐसा कुछ भी नही कहा था—"जी नही। यह मैं कह ही नही सकता—बिलकुल नही।"

उसने जोर से ठहाका लगाया, झुककर मेरे बाल झकझोरे और हिलता हुआ खडा हो गया। उसके सिर के लम्बे बाल थिरक रहे थे और उनसे झडनेवाली फुहिया मेज पर रखी गिलासो मे पड रही थी—"सागा, माचिस!" वह चिल्लाया!

उसने मेज़ के निचले खाने से डिब्बी उठायी और ओठो के बीच सिगरेट लिया।

मैंने खाने मे रखी माचिस उसकी ओर बढा दी।

"रख दीजिए उसे वह आता होगा! अबे सागा के बच्चे!" वह दुबारा और ऊँचे स्वर मे चिल्लाया।

सागा आखे मलता दौडा हुआ आया और उसने सिगरेट सुलगा दी।

"साले, तेरा बाप रतजगा करेगा और तू सोयेगा? ए?" सानू ने सागा के चूतड पर हँसते हुए एक लात जमायी—"गेट आउट! अपनी इस गेट वे ऑफ इडिया के साथ—समझा? इडिया के साथ गेट आउट!"

सागा के जाने के बाद सानू मेरी ओर देखकर हँसा, मेज हटायी और घुटनो के बल मेरे आगे बैठ गया—"मेरे मिस्टर साढू भाई ! सचमुच आपने कुछ नही कहा। कुछ कहा ही नही आपने लेकिन बहुत कुछ कह दिया। आपके शरीर से एक आवाज़ हुई—विस्फोट ! क्या कहते है साहित्यिक हिन्दी मे ? ध्वनि ! लेकिन नही, उस ध्वनि के लिए सही शब्द विस्फोट ही रहेगा ! 'घुमड घमड घटा घन की घनेरे आवैं, गरजि गयी तो फेरि गर्-जन लागी री !' किसका कवित्त है यह ? मैंने भी हिन्दी पढी है कवी जी, थोडी-बहुत जानता हूँ और शौक भी रखता हूँ ! हाँ तो विस्फोट ! सभ्य समाज मे इसे लोग अशिष्टता समझते है, अशोभन समझते हैं, यहा तक कि बदतमीजी गुस्ताखी जी हाँ, बदतमीज़ी ! ऐसी आवाज़ सुनकर शरमाते है लोग ! हँसते है ! लेकिन क्यो हँसते है ? यह समझ मे नही आता। क्यो ? क्योकि शास्त्रो मे कहा गया है—देखिए बरखुरदार, यह आप नही कह सकते कि शास्त्र आप ही ने पढा है। मेरा भी एक पेपर था—सस्कृत ! कुमारसम्भव ! तो कहा गया है—'शरीरमाद्यम् खलु धर्मसाधनम् !' यह शरीर ही सारे धर्मो का साधन है ! और चूकि विस्फोट भी एक धर्म है—अहा, फिर तक शास्त्र—इसलिए शरीर उसका भी साधन है ! मगर लोग हँसते क्यो है ?"

"अच्छा तो बस ! अब चुप हो जाओ, होश मे नही हो तुम !" मै खडा हो गया और दो-चार कदम चलकर मेज के

सहारे रुक गया।

वहीं से बैठे-बैठे सिगरेट का धुआं उसने मेरे मुँह पर फेंका जैसे वह धुआं नहीं बीयर हो—"जनाब, होश मे वह नहीं रहता जिसे पीने को कभी-कभी मिलती है "

"शटअप्!" मैं ज़ोर से चीखा और गिलास, बोतल, सिग-रेट, प्लेट और दूसरे सारे सामाना को लिये लिये मेज के साथ फर्श पर लुढ़क गया—मुह के बल!

हवा चल रही थी, फुहारे पड रही थी और पत्तियाँ ऐसे बज रही थी जैसे कोई सितार छेडे चला जा रहा हो कि इसी बीच कही पास मे ज़ोरदार धमाका हो गया! मेरी तन्द्रा टूटी तो पास से कुछ जनानी आवाज़े आती सुन पडी। मैं शायद सो नही सका था। लेकिन जगा हुआ भी नही था। मेरे कपडे सूखे हुए थे और टटोल कर मैंने जान लिया था कि मैं अपने कमरे मे हूँ।

ऊपर मद्धिम स्वर मे बजता हुआ पखा चल रहा था।

"चोट बडी मामूली है। मेरा खयाल है, दाग नही पडेगा!" यह रेखा की आवाज़ थी।

दूसरी ओर से कोई टिप्पणी नहीं।

"और अगर पड भी जाय तो लडकी थोडे है कि शादी करने मे झमेला होगा!" रेखा ने कहा और हँसने लगी।

मुझे लग गया कि मेरे शरीर मे कही चोट आयी है, लेकिन

पूरे बदन मे होनेवाले मीठे-मीठे दद ने असल जगह का पता नही चलने दिया। मैंने अपने चेहरे को जब गद्दे मे धँसाया तो ठोडी मे टीस मालूम हुई। लगा कि वहाँ रुई भी है जिसे एक-दूसरे को काटती हुई पट्टियो से चिपका दिया गया है।

मेरी साली रेखा! मी लाड! यह वही ठोडी है जो तुम्हे बहुत अच्छी लगती थी और जिसे तुमने जाने कितनी बार चूमा है! अब हँस रही हो तो हँस लो! लेकिन मैं तुम्हे अच्छी तरह जानता हूँ और यह भी जानता हूँ कि तुम्हारे नाइट गाउन और मैक्सी और अग्रेजी और पेंटीज और तमाम आव काव के बावजूद मेरी पत्नी तुमसे खूबसूरत और स्वस्थ है!

"दीदी, तुम्हे याद है न? जब हम कॉलेज मे पढते थे तो एक कवि और लेखक की साली होने का मुझमे कितना अधिक क्रेज था। उफ, मैने कॉलेज की सारी लडकियो से—यहा तक कि मैडम लोगो तक से ढिढोरा पीटकर कहा था कि ये मेरे जीजा है जिन पर तुम सब लोग जान छिडकती हो, जिनके सपने देखती हो—वो किसी दूसरे के नही, मेरे अपने खास जीजा हैं। याद है न तुम्हे, मैं पागल रहा करती थी। ज़रा सोचो तो, कवियो, लेखको, विद्वानो के बारे मे कितने ऊँचे खयालात थे हमारे! और जीजा हैं कि इन्होने कै कर-कर के जो कालीन खराब की सो अलग, मेज के शीशे तोडे सो अलग, गिलासो, तश्तरियो और बोतलो की तो बात ही छोडो। लेकिन दीदी, अफसोस इन सब चीजो के बरबाद होने का नही है, अफसोस

तो इनके घुटने और ठोडी के फूटने का है।"

"हूँ, मैं तुम्हारी तकलीफ समझ रही हूँ।" धीरे से पत्नी बोली।

"लेकिन इससे भी कही ज्यादा तकलीफ तब होती है जब मैं तुम्हारे बारे मे सोचती हूँ। कभी कभी तो आखो से आसू तक निकल आते हैं। मैं जानती हूँ कि तुम भावुक हो, शुरु से ही इन्ट्रोवर्ट भी रही हो। अपनी पीडा किसी के आगे खोलकर रखना तुम्हारी आदत नही है। लेकिन जो है, उसे कभी छिपाया जा सकता है? अपनी शक्ल तो देखो! मुझसे केवल पाच साल बडी हो लेकिन आईने मे देखो तो खुद को! बाल सफद होने लगे हैं, चेहरा जाने कैसा हो रहा है! न ढग के कपडे, न लत्ते, न खाना नही, वहा मेज पर नही, इधर लाओ और वह दीदी को दे दो!"

कोमल या कोई चाय लेकर आया था। पीछे चिडियाँ चह-चहाने लगी थी। मुझे लगा—शायद भोर हो रही है!

"जीजा को जगाएँ?" रेखा ने पूछा! "वह भी चाय पी ले, थोडा हल्के हो जायगे!"

पत्नी बोली—"नही!"

"तो मैं कह रही थी कि एक ओर शादी के पहले के तुम्हारे सपने और दूसरी ओर यह हाल! भला इन्होने तुम्हारे लिए कोई नौकर या नौकरानी तो रख ली होती। न इतना काम करना पडता और न यह हाल होता। ये एक और काम कर

सकते थे ! इन्होने तुम्हे बी० ए० के आगे पढाया होता अ
कोई नौकरी ही दिला दी होती । ज्यादा नही तो तीन-चार
रुपये महीने मे कम नही होते ! अब मेरा ही देखो,
नौकरी या काम की कोई जरूरत नही थी लेकिन सानू के क
पर वकालत पास किया और अब हाई कोर्ट से ज्यादा नही
चार हजार मिल जाते हैं—प्रति मास ! और कही हमारे सी
यर ओझा बाबू इस सरकार मे कानून-मन्त्री हो गये तो जज ह
मेरा निश्चित है ! चाय ठण्डी हो रही है, उसे पियो तो !"

"मेरी चिन्ता मत करो, कहे जाओ !"

"चिन्ता क्यो न करूँ भला ! अब यही देखो, ये बच्चे
इसी उम्र मे जो बनना होता है, बन जाते हैं ! लेकिन
ध्यान नही दे रहा है । पालिका के स्कूल मे पढकर उजड्ड
गँवार हो गये हैं । गन्दी-गन्दी गालियाँ बकते है । न
का डर, न लिहाज । और वे मेरे है कि सानू उन्हे अगले
देहरादून के सैनिक स्कूल मे भर्ती करवा रहे है । वे तो
साल उन्हे हॉस्टल मे डालने जा रहे थे लेकिन मेरे बहुत
पर किसी तरह राजी हुए।"

"पापा, यह उजड्ड क्या होता है ?" छोटे ने मेरी
कोंचा ।

मैं चुपचाप बिना हिले-डुले पडा रहा ।

"अम्मा ! मौसी क्या बोल रही है ?"

"सो जा बेटे, कुछ नही ।"

रेखा ने चुचकारा—"हाँ ! सो जा ! अच्छे बेटे बडो का कहना मानते है ! ऐ ? अरे कोमल, सुबह हो गयी है, जरा मानसवाले रेकाड तो लगाना ! हाँ दीदी, जरा यह बताओ कि मकान वही है या कही और जमीन ली है ?"

"वही है !"

"उसे तुम छोड क्यो नही देती ? झोपडी जैसा वह मकान ! ऐसा क्या है कि उससे चिपकी हुई हो ! अब यही देखो, हमने जमीन इस शहर मे भी ले रखी है, इलाहाबाद मे भी और बाम्बे मे भी। बाम्बे मे लिया तो नही है अभी लेकिन इनका तबादला हुआ नही कि ले लेंगे। हमारे बीच झगडा सिर्फ इस बात को लेकर है कि पहले मकान कहाँ बने ? मैं प्रैक्टिस छोडना नही चाहती और पता नही क्यो, इन्हे इलाहाबाद बहुत अधिक पसन्द है। जाने क्यो, इन्हे नदी और समुद्र का किनारा इतना अच्छा क्यो लगता है ! अरे हाँ, सानू ने यह बताया कि नही कि हम सितम्बर मे तीन महीने के लिए स्टट्स जा रहे है सरकार की ओर से ! जा तो वही रहे हैं लेकिन साथ मे मुझे भी चलने के लिए कह रहे है। मेरे सामने सवाल है बच्चो का ! देहरादून चले गये तब तो कोई बात ही नही, वरना सोच रहे है, क्या न तीन महीने के लिए बाबूजी के यहा रख दें ! कम से कम एक बार ननिहाल तो देख ले ! फिर बडे होने पर किसे फुरसत मिलती है ? क्या राय है तुम्हारी ?"

"यही मैं कहने जा रही थी रेखा कि हमे आये छ-सात

रोज हो रहे है, आज चले भी जायेंगे, तुमने दुनिया-भर की ब
की, लेकिन एक बार भी नही पूछा कि बाबू जी कैसे है ?" थो
रुककर पत्नी ने कहा ।

"अरे हां ? सॉरी दीदी ! मैं तो भूल ही गयी थी, अच्छ
बोलो, कैसे हैं बाबू जी ?"

"अच्छे हैं ।" लगा कि पत्नी हँसी हैं ।

"उनसे कहना कि रेखा ने बुलाया है । एक बार यहा
तो आये ! भूलना नही, प्लीज ! यह भी कहना कि हम उ
बहुत नाराज हैं !"

"कह दूँगी !"

"और कहना कि इधर नही, सितम्बर मे आये और अ
नातियो को लिवा जायें !"

"यह भी कह दूँगी मगर वे कैसे लिवा जायेंगे ?" प
थोडी देर के लिए रुकी—"रेखा, तुम्हे मालूम है कि उन्हे गुजरे
आज सात महीने हो रहे हैं !"

"ह्वा ट ? इज इट सो ? नही, यह सच नही है दीदी !
रेखा का स्वर आश्चय से रुआँसा हो उठा—"दादा या किसी
खबर क्यो नही दी हमे ?"

"तुम्हे तार दिया था मैंने ! खुद मेंने !"

रेखा के सिसकने की आवाज सुनायी पडी ।

"अरे कोमल ! तार का एक फाम तो ले आना ! अ
मैं दादा को समवेदना का तार दे रही हू !"

"दादा ने भी एक पत्र लिखा था।"

"यह घर है कि मज़ाक ? तार न मिलता तो चिट्ठी मिलती। चिट्ठी नही तो तार मिलता। कुछ भी तो नही मिला। सच कहती हूँ दीदी, इतनी चिट्ठिया आती हैं—इतनी कि जरूरी-गैरजरूरी का कोई ध्यान ही नही रखता। मैं अकेले क्या करूँ ? खैर, दादा को अलग से एक पत्र डालूगी और साफ साफ लिखूगी कि इस तरह सम्बन्ध नही निभ सकता। बताओ भला, यह कोई ढग है ?"

"दादा पाँच महीने से जेल मे हैं। इमर्जेंसी के विरोध मे उन्होने प्रदर्शन किया था।"

"यह सब क्या हो रहा है—मेरी तो कुछ समझ मे नही आता क्या जरूरत थी प्रदशन करने की। बड नेता बनने चले है। कोमल। देख साहब जग गये या नही। पता नही, उन्हे यह सब मालूम भी है कि नही ?"

"अम्मा," यह छोटे की आवाज थी, "पापा की दाढी मे क्या हुआ है ?"

"जाकर उन्ही से पूछो।" पत्नी ने उसे ठेल कर परे किया।

"गुड मार्निंग मॉम। गुड मार्निंग मौसी जी। अरे ? मौसा जी की दाढी " दीपू और स्वीटी कमरे मे आये और हँसने लगे।

"अरे मम्मी। मौसा जी की दाढी मे तो फूल खिल रहा है।" स्वीटी ने जैसे ही कहा, रेखा ठहाका मारकर हँस पडी—"ह्वाट ए पीस ऑफ पोएम। वडरफुल। क्वी जी, यह जुमला

सुनने के बाद आपको उछलकर बैठ जाना चाहिए था !
अरे ओ जीजा जी !"

लेकिन मैं न तो उछलकर बैठा, न रोया और न हँसा—उस वक्त मन ही मन मैं अपनी मृत्यु के घोषणापत्र का पहला पैराग्राफ तैयार कर रहा था—आसू और गुस्से और ग्लानि का मिला-जुला ऐसा रसायन कि पढनेवाले वाह वाह कर उठे ! और अगर कही फडक भी उठें तो क्या बात है !

इसको क्या कहेगे ? इसको कहेगे—'आम के आम, गुठलियो के दाम !' हाँ, मुहावरे मे यही कहेगे ! मुहावरा याद आते ही मुझे लगा कि बनारस मे इस समय लँगडे का भाव ढाई-तीन रुपये किलो पर आ गया होगा !

खैर, पहले पैराग्राफ दुरुस्त कर लेना जरूरी है

'ऐ मेरी मा ! प्राणो से प्यारी माँ ! मैं तुम्हारी उन सन्तानो मे से हूँ जो भर-पेट तुझे प्यार करना चाहते हैं—तेरा प्यार पाना चाहते है, लेकिन तू हरजाई है । तू कभी सेठो की छाती से जा लगी, कभी नेताओ की जाघो से जा चिपकी, कभी अफसरो के तलवो से खेलने लगी और मैं
छोटी-छोटी लालचो और उम्मीदो, तिरस्कारो और खुशामदो, हे हे और ही हियो से बना यह मैं—अपने होने को बेहतर और आरामदेह बनाने के लिए, लोगो के बीच इज्जत

पाने के लिए—यह जानते हुए कि इज्जत कम से कम काम और अधिक से अधिक आराम का नाम है—अपने और अपन रिश्तों को खुश रखने के लिए शहीदाना जिम्मेदारियों के साथ तीस सालों से लवा की तरह धधकता रहा हूँ और और'

लगा कि वाक्य कुछ बड़ा हो रहा है, उसे कुछ छोटा होना चाहिए लेकिन इस खयाल के साथ ही मुझे हँसी आ गयी—'साले चूतिया नही तो ! ज़रा सी ठोढी मे चोट लगी और मृत्यु का घोषणापत्र और वसीयतनामा लिखने लगे और वह भी झूठ ! सरासर झूठ !

मैंने करवट बदली गोया करवट बदलने से विचार भी बदल जायेंगे और वह भारीपन—जो मेरे शरीर और मन पर छाया है—दूर हो जायेगा और मैं सारी चीजों को दूसरे ढग से सोचने लगूंगा और सचमुच यही होने लगा। मेरे मन मे खयाल आया कि जब उठूगा और सानू सामने आ पडेगा तो कैसे क्या होगा ? वह अपने नाइट गाउन मे मुसकुराता हुआ हॉल मे आयेगा और माथे पर गिरे बालो को झटक कर ऊपर करते हुए बोलेगा—'हाय बरखुरदार ! यू गेट सन ऑफ ग्रेट इण्डियन स्वायल ! रात कैसी नीद आयी ?'

कैसे क्या होगा ?

मैं ठोढी पर रुई चिपकाये लँगडाते हुए क्या जवाब दूगा ?

और मुझे लगा कि मैं मुह चुरा रहा हूँ और वह जबदस्ती मेरे चेहरे को अपनी ओर करना चाह रहा है, मैं आँखें बन्द रखना

चाहता हूँ और वह उनमे झाकना चाहता है—अपनी मूँछो के नीचे मुसकुराते हुए। जैसे-जैसे उसके पतले ओठ फैलते गये, मूँछे काले कोडे की तरह तनती चली गयी—कोडा पीछा कर रहा है और मैं भाग रहा हूँ—भागना चाह रहा हूँ और पाँव जहाँ के तहा हैं, मदद के लिए चिल्ला रहा हूँ लेकिन कण्ठ से आवाज़ नही फूट रही है

'रेखा!' पत्नी बडे ठण्डे स्वर मे बोल रही है—'मेरी छोटी बहन! यह आदमी—मेरा पति—मेरे पाँच बच्चो का बाप जो घायल भेडिये की तरह तुम्हारे डनलप के गद्दे पर बेतरतीब पसरा हुआ है, जिसे थोडी देर पहले तुमने काफी खरी खोटी सुनायी है, जिस पर किसी जमाने मे तुम मरती थी—नही, मुझे कह लेने दो, मुझे सब मालूम है और तुम बहुत कुछ कह चुकी हो—और जिस पर आज भी मरनेवालो की कमी नही है—यह आदमी! मुझे अचरज है कि रात-भर—इस सारी रात अपमान सहता हुआ कैसे चुप रहा है? जिस आदमी ने सब-कुछ बर्दाश्त किया है लेकिन अपमान नही—यह क्यो चुप रह गया—मुझे आश्चय है।—आज तक किसी से नही कहा मैंने, लेकिन तुमसे कह रही हूँ कि शादी के बाद जब मैं इसके घर गयी तो पहली ही शाम—मैं अपने बच्चो की कसम खाकर कहती हूँ कि पहली शाम इसने मुझसे बीस रुपये माँगे थे—बीस रुपये और वह भी उधार! दोस्तो की जिद पर उन्हे सिनेमा दिखाने के लिए! मेरे मुह से निकला—'अगर इतने ही कगाल थे तो मुझे क्यो ले आये?'

हे बच्चो, तुम लोग बाहर जाओ ! जाओ बेटा ! बाहर खेलो हाँ ? तो मुझे कहना नही चाहिए था लेकिन मुँह से निकल गया तो निकल गया और इधर देखो ! मेरे बायें गाल पर आज भी एक उँगली का निशान है और यह भी बताऊँ कि जिसे 'सुहाग-रात' कहते ह, उसे मैंने ब्याह के तीन महीने बाद जाना। और तब से मे बराबर देखती रही हूँ कि इसने कभी किसी का राब नही सहा, किसी के आगे हाथ नही फैलाया, किसी की खुशामद नही की, किसी का ताना नही सहा—और आज वही आदमी यहा लाश की तरह पडा हुआ है ? क्यो हुआ ऐसा ?'

'देखो दीदी, अब बस करो। सुनाने के लिए मे भी बहुत कुछ सुना सकती हूँ।'

'अब इससे अधिक क्या सुनाओगी तुम ? तुम्हारे पास बचा ही क्या है सुनाने के लिए ? मै तो, रेखा, इसलिए कह रही हूँ कि रात भर रोती रही हूँ सारी रात मेरी ये पलक देखो। और रात ही क्यो, जब से आयी हूँ तब से रोती रही हूँ। मैंने इस मद के साथ सोलह साल गुजारे हैं सारी जवानी गुजरी है इसके साथ और मैंने किसी नशे का असर नही देखा इस पर—चाहे शराब हो, चाहे गाँजा, चाहे भाग, चाहे दौलत ! हा, दौलत ! यह धनी से धनी और दबग से दबग आदमी के साथ ऐसे पेश आता रहा है जैसे वह कौडी का तीन हो ! मेरे कहने का यह अथ क्तई मत लेना कि मै इसके या अपने अपमान का बदला ले रही हूँ। न, ऐसा मत सोचना। बदला म तुमसे क्या

लूगी जिसे यही नही मालूम कि उसके बाप को गुजरे कै महीने हो गये और भाई घर पर है या जेल मे ? नही, पहले पूरी बात तो सुनो ! मेरी मुश्किल यह है सिर्फ कि इसने खुद अपनी ठोडी क्यो फोड ली ? जान बूझकर क्यो फोडी ? क्या इसलिए कि यह सानू का कुछ नही कर सकता था ? क्या इसलिए कि वह मेरा रिश्तेदार और तुम्हारा पति था ? क्या इसलिए कि शुरु से ही तरह-तरह की फरमाइशे करके, यह माग के, वह माग के, दूसरो की देखा-देखी अपने भीतर सपने जगा के, औरो के आगे इसे नाचीज ठहरा के मैने इसे कुन्द बना दिया ? इसकी धार भोथर कर दी ? वरना तुम तो तुम, ये इत्ते से बच्चे तक इसकी दाढी पर फूल खिला कर चले जाये और यह यह'

"मेम साब ! फोन आया है साहब का !" कोमल किचेन या सानू के कमरे से चिल्लाया !

सोना सिसक रही थी और उसकी आवाज मानम की चौपाइयो और सुबह की हवा और बेला की गन्ध के साथ हिलती-डुलती रही—मुझे लगता रहा कि म जो क्षितिज के किनारे बडी देर से थके बादल के टुकडे की तरह ठहरा हुआ था—अब आसमान मे धीरे-धीरे तैर चला हू—मेरी प्यारी पत्नी ! म विश्वामित्र के समान छाती पर लहराती हुई सफेद दाढी के साथ दोनो हाथ फैलाये जैसे उठ खडा हुआ—'माग ले ! जो भी तुझे मागना हो, मांग ले ! मै यह सारी दुनिया फूलो की तरह—देखो ! यू अँजुलियो मे उठाकर फूलो की तरह तुम पर बरसा सकता हूँ ।

हाँ, फूलो की तरह यह सारी दुनिया ! मगर एक काम करना, घर की गली के सामने उतरते समय यह न कहना कि बच्चो के लिए कही से डेढ किलो इमरती ले लो ! फिर भी—हालाकि जेब खाली हो चुकी है फिर भी प्रिये, प्राणो की प्राण ! मुझमे इतनी शक्ति है कि तुम्हे सीने से लगा लू, बाहो मे उठा लूं, उस हिस्से को चूम लू जहा मेरी उँगली का दाग है

"अरे ? साहब का फोन आया है—क्या मतलब ? सानू कही बाहर गया है क्या ?" मै मारे खुशी के उठकर बैठ गया !

पत्नी ने कोई जवाब नही दिया।

"यार, अब यह मर्सिया पढना बन्द करो ! तैयार हो जाओ जल्दी से। फटाफट ! अगर वह नही है तो अभी निकल चलते है !" मैने फर्श पर खडा होने की कोशिश की लेकिन जोड के दर्द ने रोक लिया।

पत्नी ने मुझे देखा और देखती रही। वे इस तरह देखती रही जैसे अभी-अभी ब्यायी हुई गाय अपने बाछे को देखती है ! इस तरह देखती रही जैसे हम सोलह साल बाद मिले हो ! मै उनके आगे पहली बार शरमाया और कुछ ऐसा शरमाया कि उठकर अपना मुँह उनके आचल के अन्दर कर लिया। वे चुप-चाप मेरे बालो मे उँगलियो से कघी करती रही !

"भारत माता !" मैं व्यग से मुसकराते हुए खडा हो गया—"आज्ञा दीजिए !"

उनकी ठोडी के नोक पर आसुओ की बूदें दोनो गालो से

सरककर जमा हो रही थी और उनके टपकने की रफ्तार थोडी तेज हो गयी थी।

"दर्द ज्यादा तो नही है ?" वे बिना सिर उठाये बोली।

"क्या कहा ज्यादा ? है ही नही।"

वे चुप हो गयी और कुछ देर तक सोचती रही।

"जाओ, रिक्शा ले आओ ! चल तो सकते हो न !" उनकी आवाज वेहद ठण्डी और शान्त थी।

"अरे जीजा जी !" रेखा कमरे मे घुसते ही चौक गयी—"आप तो अरे वाह ! गाडी साढे बारह बजे जाती है आपकी। तब तक आप चगे हो जायेगे !"

"डार्लिंग ! आज सात ही बजे जायेगी, तुम्हे मालूम नही !" म उसे देखकर हँसा और सोना की ओर मुडा—"ऐसा करो कि इनके सारे सामान निकालकर अलग रख दो, इनका कुछ नही ले जाना है ! मै रिक्शा लेकर आ रहा हूँ।"

"नही, यह क्या कर रहे है आप लोग ? बारह बजे खन्ना की जीप आयेगी। और अभी सानू ने फोन किया था कमिश्नर साहब के यहाँ से कि हम सीधे बारह बजे स्टेशन पर मिलेगे। अभी किसी ने मुह-हाथ नही धोया है, नाश्ता नही किया है"

"रेखा !" पत्नी ने रेखा के हाथ पकड लिये—"हम नाराज नही है मेरी छोटी बहन ! हम बडे खुश है। तुम लोगो की खातिरदारी से हम वडे सन्तुष्ट और खुश है लेकिन हम पर तरस खाओ ! हमे जाने दो, ईश्वर के लिए ! प्लीज, अब मत

रोको ! हम फिर आयेंगे, कहोगी तो फिर आयेंगे और बहुत दिन रहेंगे लेकिन अबकी जाने दो ! मेरी बात मानो, हम सच-मुच खुश हैं !"

दाहिनी टाँग घसीटते हुए मैं दरवाजे के बाहर आया और बरामदे मे खडा हो गया—आसमान साफ था, धरती सूखी थी और सामने से ठण्डी हवा आ रही थी। मैदान का आधा हिस्सा छाया मे था और आधा धूप मे—मैदान के पार धूपवाले हिस्से मे दो-तीन रिक्शे खडे थे जिन तक आवाज़ पहुँच भी सकती थी या नही, मुझे सन्देह था।

मैंने शहर के पूरबी किनारे पर बादल के एक छोटे से टुकडे के साथ जूझते सूरज को देखा। वह जैसे ही पल-भर के लिए बादल से बाहर आया, मैं पूरी ताकत से चिल्लाया—

"गुड मार्निंग सर !"

मेरी आवाज़ रिक्शे तक नही पहुँच सकती थी—मुझे लगा।

मैं मुसकुराया और मैदान के बीच से भचकते हुए चल पडा—सीना ताने और गरदन उठाये गोया इतने से मेरा भचकना छिप जायेगा !

मगलगाथा

मेरे बेटो, तुम सोते वक्त हमेशा ज़िद करते हो कि 'कोई कहानी सुनाओ', 'कोई कहानी सुनाओ' और मै हर बार कोई-न कोई बहाना बना देता था लेकिन आज मैं तुम्हे कहानी सुना रहा हूँ। है तो सच्ची बात लेकिन तुम्हे कहानी ही लगेगी क्योकि जिन चीजो के बारे मे मैं बताने जा रहा हूँ, उन्हे तुम नही जानते।

अभी पिछली गर्मियो मे मट्टू मेरे साथ गाँव गया था—पहली बार। उसने दरवाज़े पर बँधी भैस देखी और जोर से चिल्ला पडा—'पापा, सूअर! इत्ता बडा सूअर!' गाव के ढेर सारे लोगो के आगे मेरा सिर शर्म से झुक गया। किसान का नाती और भैस को सूअर बोले! लेकिन उसका भी कसूर नही। उसने शहर मे सूअर देखा था, भैस नही। मगर लोगो ने कहा—'नाती शहरी हो गया'। यानी किसी काम का न रहा। सारे गाव मे इस बात को लेकर हँसी होती रही। कुछ वैसे ही जैसे शहर से गाँव गये हुए एक झा साहब हम लोगो को दर्जा नौ मे 'नागरिक-शास्त्र' पढाते थे। उन्होने एक दिन कहा—'हमेशा एक अच्छे

नागरिक को सडक के बाएँ बाजू से चलना चाहिए।' परमिद्ध ने पूछा—'अगर मेड हो तो ?' झा जी पहले तो अचकचाये, फिर बोले—'मैं नागरिक की बात कर रहा हूँ।' उसने उसी रौ मे पूछा—'क्या हम नागरिक नही हैं ?' झा जी ने कहा—'नागरिक वह है जो नगर मे रहता हो !' परसिद्ध ने कहा—'फिर आप जाइए, इस शास्त्र को नगर मे पढाइए !' और सचमुच झा साहब उस विद्यालय मे ज्यादा नही टिक सके !

बहरहाल, मैं उन दिनो और उस गाव के बारे मे तुम्हे सुना रहा हूँ जहा मेरा बचपन गुजरा है और वे दिन और वे लोग और वे सारे के सारे खेल-तमाशे तुम्हारे लिए ही नही, मेरे लिए भी सपना हो चुके हैं। मेरी जिन्दगी के सबसे अच्छे दिन—जिन्हे कोई भी मुझे लौटा नही सकता। जिन्हे चाह कर भी अब मैं हासिल नही कर सकता—अपनी सारी खुशी, सारी कमाई और सारे ज्ञान के बदले। मैं आज भी गाँव जाता हूँ लेकिन अब न वह गाँव है और न वे लोग। मेरे बेटो, मैं तुम्हे सारे सुख और सारी सुविधाएँ मुहय्या कर सकता हू लेकिन उसे कहा से दू जो खुद मेरे ही पावो के नीचे से तीस साल पहले खिसक चुका है।

इसका यह मतलब कतई नही है कि मेरा बचपन बडे ऐशो-आराम का रहा है। यद्यपि हम अपने गाँव के सबसे खाते पीते किसानो मे थे और सच कहो तो दूसरो का देखते हुए थे भी, लेकिन जैसी मुश्किल जिन्दगी हम जी रहे थे, उसे हमी जानते है।

आह ! देखने लायक होता था वह दृश्य जब घर पर कही

से मेहमान आ जाता था। हम सभी बच्चे कभी कभी भगवान से प्रार्थना करते थे कि हे प्रभो! बहुत दिन हो गये, कहीं से कोई मेहमान भेजो! और जब मेहमान आ जाता था तब हम स्कूल के लिए चल तो देते थे लेकिन जितना समय स्कूल मे बीतता था, उसके एक-दो घण्टे पहले तक अरहर के या गन्ने के खेत मे बिताते थे और पहले ही पहुँच कर घर पर घोषणा कर देते थे कि 'कल डिप्टी साहब आने वाले हैं, इसलिए अभी छुट्टी हो गई।' और हम सबकी खुशी का ठिकाना नही रहता था आज तरकारी भी मिलेगी, चटनी भी मिल सकती है, चूंकि सवेरे मट्ठा नही मिला है इसलिए दही या गोरस भी मिल सकता है और सबसे बडी बात तो यह कि आज अकेले चावल या रोटी नही, दोनो एक साथ मिलेंगे कभी-कभी खब्बू मेहमान आ जाता तो हम टापते रह जाते लेकिन उम्मीद की खुशी क्या कहिए?

तो घर की हालत यह समझो कि जब से मैंने होश सँभाला तब से वह मौसम पर चल रहा था। यानी गरमी मे पाल का पका आम, बरसात मे ककडी और सवाँ, उसके बाद बाजरे का दाना और भात, जाडे मे मटर की घुघनी, गन्ने का रस, गेहूँ का हाबुरा, चने का होरहा, चूडा और लाई, कभी-कभी चावल। और ऐसा नही कि ये चीजे भी इफरात थीं। इसे एक मामूली से उदाहरण से समझ सकते हो—अपने गाँव के गोवधन अहीर का कोल्हू गडता था तोखवा नीम के पास। जब गन्ने की पेराई शुरु

होती थी तो उनके घर के सातो बच्चे एक कतार मे बैठ जाते थे और गोवधन उनके आगे गन्ने का एक गिलास रस रख देते थे और ललकारकर कहते थे—'खीचो ! खूब सिक्कम (शक्ति) भर खीचो ! फिर यह मत कहना कि दादा ने रस पिलाने मे कोताही की !' अब सोचो सात लडके और एक गिलास रस ! तो यह हाल था लोगो की खुशहाली का।

हाँ, गेहूँ के सिर्फ दो उपयोग थे--शादी-व्याह और श्राद्ध ! उसके बारे मे कहा जाता था कि ये ब्राह्मण देवता ह, चमार के घर नही जायेंगे। गेहूँ कभी भी किसी हलवाहे या चरवाहे को मजूरी मे नही दिया जाता था। हमारे लिए गेहूँ का केवल एक ही अथ था पूडी। सब्जी तो तब बनती थी जब कोई मेहमान आता था। ऐसे बरसात मे करेम का और जाडे मे बथुवा, मटर और चने-सरसो का साग भी चला करता था। इनके सिवा जब भैंस लग रही होती थी तो आजी आगन के एक कोने कमोरी मे मट्ठा लेकर बैठ जाती थीं—साथ मे नपना के रूप मे घर की सबसे छोटी गिलास होती थी। हम सभी अपना अपना गिलास लेकर उनके पास जाते थे और अपने हिस्से का मट्ठा लेकर लौट आते थे।

हँसो मत, लोग कहते हैं कि जदुआ बहुत खाता है। अपने दोस्त-मित्र कही जाते हैं और खाने की अच्छी चीजें देखते हैं तो उन्हे जदू की याद आती है कि अगर वह साला होता तो खूब खाता। बात ऐसी नही है मेरे बच्चो, जो चीजें मैंने नही

देखो थो या नही खाई थी लेकिन खाने के लिए तरसता रहता था वही चीजे किसी पार्टी मे या कही दिखाई पडती है तो मैं पहले उन्ह ललचाकर देखता हूँ और खुलकर उनकी तारीफ करता हूँ। और लोग यह समझते हैं कि जद्दू भर पट ठूस रहा है।

प्रेमचन्द की कहानी तुमने पढी है—'बडे घर की बेटी'। घर टूटता है घी के मामले को लेकर। दूध दही के मामले को लेकर। उन दिनो घर की जो मालकिन होती थी, 'घी' और 'गोरस' उसके अधिकार में होता था। इसका एक मजेदार किस्सा तुम्हे सुनायें—उन दिनो थे देऊ भैया। उनका लडका था सोमारु। वे उसका इतना अधिक तिलक चाहते थे जितना गाव मे किसी का न चढा हो। उनके यहा सोमारू को देखने के लिए कुछ लोग आये। देऊ भैया दौडे दौडे हम लोगो के यहा पहुँचे। खाली वक्त, दोपहर मे बहुत-से लोग दालान मे जुट थे। उन्होने पूछा —'किसोरी भैया, महँगा दूध होता है कि दही कि घी?' सबने एक स्वर से कहा कि भई, महँगा तो घी ही होता है। वे भागे-भागे गये और चीनी के शरबत मे आधा सेर घी छोड आये। शरबत पीने के बाद सारे मेहमान लोटा लेकर पोखरा की ओर दौडने लगे। तो घी से महँगी चीज देहात मे कोई थी तो सोना। शादी के लिए आने वाले लोग सबसे पहले यही देखते थे कि उसके दरवाज़े पर गाय या भैंस है या नही? दूसरी ओर खिलाते समय लोग अधिक से अधिक घी दूध खिलाकर यही दिखाना

चाहते थे कि मेरी हैसियत तो यह है, अब तुम्हारी हैसियत कितने भर सोने की है ? इसलिए तुम देखोगे कि सारे परिवार इसी घी या सोने को लेकर टूटे है।

औरो की बात छोडो, मै अपने परिवार की बात करूँ। मेरे पिता यानी तुम्हारे बाबा तीन भाई थे और उनमे खूब पटती थी। गाँव मे किसी ने उन्हे एक दूसरे के आगे जबान खोलते हुए नही देखा था हालाकि भीतर-भीतर वे सभी चोरी छुप अपनी औरतो-बच्चो के लिए थोडी बहुत बेईमानी करते आ रहे थे। इसे वे जानते भी थे लेकिन इससे कोई बात नही। उनमे अलग्योझा हुआ एक बडी ही मामूली चीज को लेकर। छुछिया जानते हो ? सोने की एक बहुत छोटी मामूली सी कील जो नाक मे पहनी जाती है और जिसकी कीमत उन दिनो पाच रुपये से अधिक न होती थी। तो एक थी हमारी बुआ जो हमेशा छुछिया पहने रहती थी, मर गयी। भाई उ ह बहुत प्यार करते थे क्योकि विधवा होने के बाद से मरते दम तक वे उनके ही पास रही। वे सबको एक मे बाधे रहने का भी काम करती थी। तो मर गयी और उनकी नाक मे छुछिया थी। बिलखते-बिलखते पिताजी के बडे भाई ने कहा कि उन्ह हम अपन हाथो नहलायगे बुलायेंगे तब जाकर मुझे तसल्ली मिलेगी। इसमे क्या एतराज हो सकता था ? उनके प्रेम और दुख को देखते हुए सबने 'हा' कर दी। लेकिन टिकठी पर लिटाते और कफन बाधते समय लोगो ने—खासतौर से भाइयो ने गौर किया कि छुछिया

नाक मे नही है।

इस घटना के तीन महीने बाद जब फसल ओसा-दवाँकर तयार हुई तो परिवार से जुडे दो-चार मानिन्द आदमियो को बटोर करके 'छुछिया' का मामला पेश कर दिया गया और उसके बाद तो तीन भाई और तीन चूल्हे।

खैर, मै बहक गया। कहानी दूसरी है जो मुझे कहनी है। दरअसल, गाँव का नाम लेते ही बहुत सारी बाते एक साथ मेरी जबान से बाहर आने के लिए धक्का-मुक्की करने लगती हैं। इसलिए अगर में बीच-बीच मे भटक भी जाऊं तब भी तुम्हे अखरना नही चाहिए।

तो गाँव पर हम बच्चो के दिन बडे शानदार ढग से गुजरते थे। हमे आज वे दिन शानदार लग रहे है लेकिन सच कहो तो शानदार थे नही। बस इसी से समझ सकते हो कि मैने चौदह साल की उमर मे पहली बार रेलगाडी देखी, सोलह साल की उमर मे मोटर पर चढा। गाव मे जूते का कोई काम नही था। जब कभी घर मे कोई व्याह पडता तो पहाडपुर मगरू चमार के यहाँ जाकर सबका पैर नपवाया जाता और जब जूते तैयार होकर आते तो उन्हे मुलायम करने और पहनने लायक बनाने के लिए तेल पिलाया जाता। और बारात का दृश्य तो बेहद मजेदार होता!

इधर देखो, बारात रवाना हो रही है अब। बाजे-गाजे बज रहे हैं। दूल्हे राजा जामा-जोडा पहनकर पालकी मे बैठने आ

रहे हैं। पैर को चमरौधे ने ऐसा चाप रखा है कि बदन ऐंठ गया है और जनाब भचक रहे है। बारातियो मे कुछ लोगो ने जूते को लाठी के सिरे पर टाँग रखा है। कुछ हैं जिन्होंने दो दिन पहले से जूते पहनकर चलने का अभ्यास किया है लेकिन उस दौरान फफोले पड गये है और वे लगडाते हुए किसी तरह चल रहे हैं। कुछ हैं जिन्होने जूतो को काँख मे दबा रखा है और उन्हे द्वार-पूजा के समय पहनेगे। लेकिन जब पहनकर चलते है तो भहराकर गिर पडते है क्योकि जूते पहनकर चलने की आदत नही। इसके बावजूद बारात मे सबको सबसे अधिक चिन्ता अपने जूतो की ही रहती है। एक बारात से दूसरी बारात के दरम्यान जूते छोटे पड जाते है क्योकि बीच मे और कभी उनका इस्तेमाल नही होता। इसलिए अगर तुम्हे मेरे पैर बडे भद्दे और बदशकल दिखायी पडते है तो पन्द्रह सोलह साल की उम्र तक कभी ठीक से जूते न पहनने के कारण!

तो गाव मे हम बच्चो के लिए दो मौसम खासतौर से बडे प्यारे और मज़ेदार होते थे—एक तो बारिश और उसके बाद का जब बाजरे और जो हरी मे बाले फूट आती थी, मचान गड जाते थे और अगोर शुरू होती थी, दूसरे जब सिवान मे गन्ने तैयार हो जाते थे और मटर चने पकने लगते थे। ऐसे तो गर्मी भी बुरी नही बीतती थी। गाव के सारे बच्चे सुबह बगीचे मे निकल आते थे—हाथ मे ढेलो के साथ। इतना गझिन, छायादार और बडा बगीचा और किसी गाव का नही था। जिस

साल आम खूब फलते थे, उस साल सारे गाव के लोग उसे रख-रखाव के लिए किसी खटिक को सुपुर्द कर देते थे। उस साल हमे थोडी दिक्कत जरूर होती थी—लेकिन थोडी ही। क्याकि बच्चा-पार्टी और खटिक के बीच ठन जाती। फिर हम झुण्ड मे न होते, एक-दो की सख्या मे दूर-दूर तक फैल जाते। वह एक ओर दौडता तो लोग बाकी तीन तरफ चालू हो जाते। वह गालियाँ देते हुए दिन-भर दौडता रहता और रोज एक बार हमारी शिकायत घर पर कर आता। हम घर पर मार खाकर एक-दो रोज ठप पड जाते लेकिन फिर उसके बाद वही धन्धा। कई बार तो उसकी झोपडी तक फूक डालते, उसे लोटा-डोर लेकर बगीचे से भागने के लिए मजबूर कर देते।

हा, जब खटिक की चर्चा कर रहे है तो अपनी पार्टी के भग्गू और सुक्खू का जिक्र जरूरी है। ये दोनो भाई थे और बगीचे के किसी भी पेड पर—चाहे वह कितना ही बेढब क्यो न हो—चढने की कला मे माहिर थे। एकदम काले कलूटे। जब डाल या तने से चिपक जाते थे तो क्या मजाल कि किसी को दिखलायी पड जाये—चाहे चोरबत्ती की रोशनी फेको या लालटेन लेकर बगीचा छान मारो। जब हमे खटिक की शिकायतो का बदला लेना होता तो भग्गू और सुक्खू हमारे अमोघ अस्त्र थे जिन्हे रात के अँधेरे मे चलाया जाता।

लेकिन जैसा कहा कि यह किसी किसी साल होता, अक्सर हम ढेलो के साथ सुबह सुबह बगीचे मे होते। आम मारते,

लूटते, खाते और सारी दोपहरी खेलते—कभी होला पाती, कभी कबड्डी, कभी सटर्रा, कभी चलबा, कभी चिविल्लो, इन्ही खेलो के दौरान खबर लेते रहते कि आज रात किस गाँव मे कौन भाड आ रहा है ? उन दिनो बारात मे भाँडो का आना इज्जत की चीज थी । हम खा-पीकर रात के वक्त जत्थो मे चल देते—कभी दो कोस, कभी तीन कोस ! नाच देखने के बाद लौटते समय कटहल और आमो की चोरिया भी चला करती । परसिद्ध तो जब भी नाच देखने जाता, काख मे बोरी भी दबाये जाता । भग्गू जिस तम्बू मे पहुँचता, जूते जरूर मार लाता । सुक्खू की दूसरी लत थी, वह बारात के परजुनियो के साथ पगत मे बैठ जाता और खूब चापकर खाता । रामकरन भीड मे धँस जाता और किसी ब्यौत मे नौशा के पास बैठे लोगो मे अपने लिए जगह बना लेता जहाँ प्राय पान, बीडी, सिगरेट, इत्र के फाहे और मेलो की तश्तरिया पेश की जाती हैं ।

ये बीते हुए दिनो की बाते हुई मेरे लाडलो, आज भी वह बगीचा है—खखड और उदास । वही से होकर हम गाव मे घसते हैं । उसमे कभी सनई और चरी की फसल दिखायी देती है, कभी जौ और अरहर की, कभी सरसो और तीसो की । आम और आदमी के सिवा उस बगीचे म बहुत कुछ देखता हू और आँखे भर आती हैं ।

अधिक-से अधिक जमीन हथियाने—उसे दखल करने, अधिक से अधिक अन्न उपजाने और धनी होने की होड ने मेरे गाँव से

पूरी एक जाति ही नष्ट कर दो—इसके लिए दोष किसे दिया जाये ? कई साल हुए, लल्लू और महादेव से भेंट हुई थी। लल्लू सडक के किनारे पान बीडी की दुकान खोले है और साइकिल का पंचर ठीक करता है। महादेव दूसरे किनारे मूँगफली, रेवडी, बताशे, बिस्कुट, लेमनजूस और गुब्बारे बेचता है। ये मेरे यहा के दो गडरिये थे। कई गाँवो के बीच ये ही अकेले दो घर। इनके पास पचास-पचास की सख्या तक भेडे थी। ऊसर, बजर, भीटा, बगीचा, मेड, कटे खेत—ये दूर-दूर तक कधे पर कम्बल रखे, लोटा-डोर लिये भेडें चराते फिरते और जिस-किसी के परती खेत मे भेडो को रख देते। वहा से उन्हे केडा मिलता, खाना मिलता। भेडो की लेंडियो और मूत की खाद का जवाब न था। लेकिन जिस रफ्तार मे बाग-बगीचे, ऊसर बजर, भीटे खेत बनने लगे, भेडो का निकलना दुश्वार हो गया। वे कहाँ चरे ? कहाँ जाये ? दोनो ने बडे दुखी स्वर मे कहा— भैया ! और तो और, जब से यूरिया' मिलने लगी तब से हमारी पूछ ही खत्म हो गयी। हम उन्हे रखकर क्या करते ?''

ऐसे यह अकेले गडेरिया जाति की ही बात नही है, लगभग सारी जातियाँ उलट-पुलट हो गयी। बहुत से ठाकुरो ने परचून की दुकाने खोल ली, कई ब्राह्मण हलवाई हो गये, गरीब लुहार बजाज हा गये, रामदीन चौधरी शहर मे रिक्शा चलाने लगे, मिट्ठू मियाँ को, जो भाड-मण्डली चलाते थे, बोलते सिनेमा ने ऐसा मारा कि वे अपनी मण्डली समेत चिरीमिरी कोयले की

खदान मे चले गये।

यह तो हुई एक बात, लेकिन मुझे याद आता है अपने बचपन का वह गाव जो धीरे-धीरे जाने कब मर गया और उसी जगह उतने ही रकबे मे आज जो खडा है—वह चाहे जो हो, जीयनपुर नही है। उन दिनो वह गाँव नही, छोटा सा पुरवा था—पाच ठाकुरो के घर, चार अहीरो के, दो लुहारो के, दो गडरियो के, दो भडभूजो के, दो तेलियो और दो कहारो के। पुरोहित, नाई, धोबी दूसरे गाव से आते थे। गाँव के तीन तरफ तीन चमटोले थी इसलिए हलवाहो और चरवाहो की कभी परेशानी नही हुई। ठाकुरो के घर पूरब और उत्तर पडते थे और गाव की सारी खूबसूरती इसी तरफ थी—वह खूबसूरती क्या थी, इसे देखो!

पूरब तरफ एक क्रम से चार दुआर थे और उनके आगे बहुत दूर तक फैला हुआ लम्बा-चौडा सपाट ऊसर। वह ऊसर चार हिस्सो मे बँटा हुआ सबके लिए खलिहान का भी काम देता था और हमारे लिए खेल का मैदान भी था। इस ऊसर के पार की सीमा पर पूरे गाँव पर खिंची खडी पाई की तरह आधे मील तक फैला ताडो का एक कारवाँ था—बडा ही शानदार और आकर्षक। दूर-दूर से गिद्ध आकर इन पर बैठते और अपने डैनो के साथ ताड के पत्तो को खडखडाया करते। इन्ही ताडो के बीच बीच मे ऊसर के पास नीम के कुछ पेड थे जिन पर सावन का झूला पडा रहता।

इन्ही पेडो के बीच मे गाव का अखाडा था जहाँ हम कस-रत करते, कुश्ती लडते और नागपचमी की तैयारी करते हुए दूसरे गाँवो के लडको को चुनौतिया देते। हमारे उस्ताद उस इलाके के जाने-माने पहलवान थे। उनमे फुर्ती तो कम थी लेकिन ताकत बला की थी। वे सडक, बाजार, मेला-ठेला—चाहे जहाँ जाते, उनकी नजर हमेशा अच्छा बदन ढूँढती रहती। क्या बढिया पट्ठा है ? पता करते, कहाँ का है ? उनकी सबसे बडी लालसा थी कि उनका एक ऐसा शागिद हो जो उनका और गाव का नाम रोशन कर जाय।

गाँव मे अगर कोई भी ठाकुर या अहीर का ऐसा लडका दिखायी पड जाता तो वे लोगो से कह-सुनकर घी-दूध-दही का इन्तजाम करवाते और उसे तैयार करना शुरू कर देते। ऐसे ही उन्होने उस जमाने मे छब्बू को तैयार करना चाहा था और वह हुआ भी—उभरता हुआ एक अच्छा पट्ठा। उसे दगलो मे ले जाते। उसने कुछ अच्छी कुश्तियाँ मारी और उस्ताद की खुशी का ठिकाना न रहा।

लेकिन एक दिन उन्होने छब्बू को देख लिया। कटिया चल रही थी और छब्बू मेड पर बैठा हुआ शीबू चमार की लडकी को आम का एक फारी अँचार दिखा रहा था। वह जौ की डाठे काट रही थी और मुड-मुडकर दूसरो की चोरी उसके हाथ की तरफ ताक लेती थी—जिसमे अँचार था। उसकी जीभ अँचार के लिए लपलपा उठती। जब वह लोभ बरदाश्त न कर

सकी तो किसी बहाने से अरहर के खेत में घुस गयी।

दूसरी तरफ से छन्नू पहलवान भी जा घुसा।

उस्ताद एक पेड़ के नीचे बैठे भैंस चरा रहे थे और यह सारा माजरा देख रहे थे। उनसे रहा न गया और वे एक बेकाबू सांड की तरह कूद गये। लोगों ने देखा कि नंग-धड़ंग छन्नू उनका लात, घूसा, मुक्का खाता हुआ गिरता भहराता गड़े की नीम तक आया और जो गिरा, फिर उठ नहीं सका। उस्ताद तीन महीने तक गाँव में न दिखायी पड़े।

मेरे बेटा, आज उस अखाड़े की जगह घूर है।

एक बार यूँ ही उस्ताद से पूछ बैठा—कुछ साल पहले जिस समय वे नीम के नीचे चरही कर रहे थे—कि इन दिनों इधर *अच्छे पहलवान किस गाँव में हैं?* उनके चेहरे पर हताशा झलक आयी—'मास्टर, पहलवानी करना हाथी पालने जैसा बड़ा वेवाहियात काम है। बल्कि हाथी पालने में एक लाभ तो है कम-से-कम कि उस पर बैठा जा सकता है लेकिन यहाँ तो सिर्फ खोना-ही खोना है, पाना कुछ नहीं। पहलवान न तो खेती कर सकता है, न कोई नौकरी कर सकता है, न जरूरत के समय मार-पीट कर सकता है, अलबत्ता घर में आठ-दस आदमी मिल-कर जितना खायेंगे, उतना अकेले खायेगा, घी दूध-दही के लिए दूसरे तरसते रहें लेकिन उसे दोनों जून मुसल्लम चाहिए और यह सारा-का सारा किस लिए? तो डण्ड पेलने के लिए, मुसक-चल्ला बनाकर घूमने के लिए। ऐसे आदमी को क्या जरू-

रत मास्टर ? और इतना ही नही, लँगोट का ढीला हुआ तो बदनामी गाव-भर की अलग से, और सोहबत कही खराब मिल गयी तो डाका वह डाले और थाना कचहरी से दूसरे निबटे !

खैर, तो इन ताडो के आधे-आध-मे—जहाँ बस्ती की उत्तरी चौहद्दी खत्म होती है—पूरब से लेकर पच्छिमी छोर तक बाँसो, पलाशो और चिलबिलो की कतार फैली हुई थी और फिर उसके आगे तरकुलो की चौडाई को नापता हुआ बडा-सा ताल ! गाव का बगीचा इसी ताल के पार पडता था। यह ताल और ताड—इस पार बँसवार और उस पार बगीचा—ये जीयनपुर की जान थे। बरसात मे जब यह ताल भरना शुरू होता, मेढक और झीगुरो के स्वर समूची बस्ती पर मँडराते, हवा बगीचे और बँसवार के बीच पैतरे भाँजती फिरती, आसमान की ओर बारम्बार उचकते ताड के पेड झूमने मे कोई कोर-कसर नही रखना चाहते और पानी की सतह के अन्दर हिलती हुई झुकी बास की फुनगियो को देखकर ऐसा लगता मानो पलाश और चिलबिल के लम्बे-ऊँचे पेड ताल मे बशी लगाये खडे हो।

हम अपनी अपनी भैसें खूटे से छोड़ते, लाठी-डण्डे उठाते और ताल बगीचा पार करते हुए गाव से बहुत दूर गुरेहूँ के ताल मे निकल जाते। भैस जब तक चरती रहती—और वे चरती कहाँ ? सच कहो तो उनकी खुशी देखने लायक होती। वे चरती कम, एक-दूसरे को दौडाती अधिक। कभी कभी तो अपने आप

पूछ उठाये भागती और किसी पेड के तने से उलझ जाती—लडाकू मुद्रा मे। वे वार-बार मैनाती और सीगे अडा अडाकर तनो से भीगे और बेजान चपडे छुडा डालती। कोई-कोई तो नथने फडफडाती हुई आसमान की ओर जबडे फैलाकर चोंकरती, जैसे किसी को आवाज़ दे रही हो, फिर मुडकर किसी भैस के पुट्ठे मे पूँछ के पास अपने नथने सटा देती। उतने ही प्यार से वह दूसरी भैस अपनी पूछ उठा देती और दार्शनिक भाव से सामने देखती हुई पगुरी करने लगती। कोई भैस तो चरते चरते सहसा दौडकर दूसरी के पुट्ठे पर सवार हो जाती जैसे भैसा हो और फिर जिस निराश मन से धीरे-धीरे अगले पैरो को उसके पुट्ठे से नीचे उतारती कि वाह! लेकिन दूसरी भी घूमकर अपने नथने उसके हताश जबडे के पास ले आती और फिर अपनी सीगो के सहारे उसके माथे को ऊपर उठाकर कान चाटने लगती जैसे पूछ रही हो कि 'क्या वात है? आखिर परेशान क्यो हो?"

लेकिन जब बारिश तेज़ हो जाती, सारा सिवान धुधला हो उठता तो सबकी सब अपनी जगह चुपचाप विनम्रता और सज्जनता की मूर्ति की तरह खडी हो जाती।

तो जब तक वे चरती रहती, तब तक हम खेलते रहते। और क्या-क्या नही खेलते? सधे मे कही कोई चूहा दिखायी पड जाता, सब लोग मिलकर उसे दौडा दौडाकर मार डालते। अगर नही दिखायी पडता तो जहाँ कही विल मिलती, उसमे

पानी भरना शुरू कर देते। तब तक किसी दूसरी ओर से परसिद्ध मोटा पीला डोडहा (सप की एक विषहीन जाति) मारकर डण्डे पर लटकाये चला आता। इसी बीच पानी के डर से किसी पेड के तने के पास खडा सियार लोमडी दिखायी पड जाती। फिर क्या था ? हम योजना बनाकर उसे पहट लेते और जब ऐसी हरकतें कर कराकर थक जाते तो कबड्डी ! नही तो कुश्ती ! नही तो दूसरे गाँव के चरवाहो से बहाने ढूढकर झगडा और मार-पीट !

और समझो, शाम होते होते जब हम भैसो की पीठ पर बैठ कर फुहियो मे भीगते हुए अपने घर का रुख लेते तो दूर धुधले-धुँबले दिखायी पडते झूमते ताड ऐसे लगते जैसे जीयनपुर अपने बीसियों हाथ उठाकर हमे बुला रहा हो !

मेरे बेटो, आज न वे ताड ही रह गये हैं और न ताल !

ताड के भीटे कट कुटकर मेड हो गये है और ताल धान के खेत !

तो मैं बात कर रहा था सन, ४२ के अगस्त महीने की। मैं उस समय मुश्किल से पाँच-सात साल का रहा हूगा और आज उस पूरे मामले की धुँधली-सी याद है ! गाव के पूरब अडार के पास हमारी पाही थी जहाँ शाम को गाय बैल बँधते और हम मडई मे चाचा के साथ रातें बिताते। ककडी भी अगोरते और गोरू भी देखते। पाही मे थोडी दूर पर एक सिलसिले से आगे-पीछे पूरे गाव के बाजरे और जो-हरी के खेत थे। हर खेत के बीच

मे मचान थे। हम दिन-भर कौवे उडाते—हालाकि ज्यादा परेशानी हमे सुवह-शाम ही उठानी पडती। कौवे ही क्यो—दूसरी सभी चिडियाँ जब सबेरे अपनी यात्रा पर निकलती तो आगे कही दूर जाने से पहले वाजरे और जोन्हरी की वालियो के फूलो का कलेवा कर जाना चाहती—लिहाजा गाव के सभी बच्चो और चिडियो के बीच घण्टो 'वाग्युद्ध' चलता। यह अकेले जीयनपुर की ही वात नही थी—हतमपुर, आवाजापुर, मिर्जापुर, भदाहूँ, कवँई, पहाडपुर, करजौडा—सभी गाँवो के सिवान अपनी वुलन्द आवाज मे चिल्लाना शुरू करते और लगता कि ये सारी आवाजें एक हो गयी ह—जैसे चारो तरफ के खेतो से आवाज़ फव्वारे की तरह फैल रही हो और वहुत ऊपर उठकर किसी एक बिन्दु पर मिल रही हो।

चिरई उडाने और चिल्लाने की यह लडाई और भी घमासान हो उठती जब झुण्ड-की-झुण्ड चिडिया थोडी थोडी देर बाद अलग-अलग जत्थो मे खेतो पर धावे मारती। हर मचान से ऐसा हाहाकार मचता कि वे कही भी ठिकाने से वैठ न पाती और एक खेत से दूसरे खेत पर चक्कर काटती हुई आखिरकार वापस किसी डाल पर जाकर दम लेती। इस मामले मे सबसे हरामी कौवे होते। एक तो वे कभी झुण्ड नही बनाते, दूसरे सीधे उडकर हमले नही करते। वे पहले खेत से दूर किसी मेड पर बैठकर अगोरने वाले के गाफिल होने का इन्तजार करते, फिर चुपके से उडकर पास के किसी परती खेत मे आते और ऐसा जाहिर

करते कि उनकी बाजरे मे कतई दिलचस्पी नही है। उसके बाद तो एक झपट्टे के साथ पौधा झुकाते, डण्ठल पर चोच मारते और पूरी बाल लिये दिये पास के किसी पेड पर चले जाते। ऐसे यह काम उनके लिए इतना आसान न होता। हम उनकी चालाकी को भली-भाति जानते इसलिए वे जैसे ही बैठते, हम उन्हे खदेड लेते लेकिन वे बाये से उडकर दाय चले जाते, हम पछियाते हुए दायें आते तो वे बाये चले जाते, कभी उस पार, कभी इस पार, कभी मचान पर। वे हमे दौडाते दौडाते तग कर मारते।

वह जमाना था जब फसलो को खतरा आदमियो से नही, चिडियो, सियारो, नीलगायो और साँडो भैसो से था। यह अब हुआ है कि फसलें खडी रहती है और बाजरे, मक्के, जौ, गेहूँ की बालें रातो-रात गायब हो जाती हैं।

हाँ, तो दोपहर-तिपहर का वक्त अलबत्ता फुर्सत का होता। इस समय अगल-बगल के सभी खेतो से लडके-लडकियाँ एक जगह जुट आते और फिर खेल शुरू होता। लडको के अलग, लडकियो के अलग। कभी कभी खुरपी खाँची फेककर या चरती भैसो को छोडकर बडे भी इन खेलो मे शामिल हो जाते। इन्ही बडो मे मेरे गाव का सिमगल भी था।

सिमगल काला, नाटा और छोटी टाँगोवाला नौजवान था। उस पूरे इलाके मे दौडने मे उसका कोई सानी न था। जब भी 'चलबा' होता, वह सास बाधकर किसी को भी दौडाकर मारता

और अपनी गोल मे लौट आता। वह उस समय का नामी चोर था और कभी भी किसी की पकड मे न आया। उस इलाके मे कहीं भी चोरी होती, पुलिस सिमगल की खोज खबर लेने गाव जरूर चली आती। दोनो के बीच बडी ही स्वस्थ समझदारी थी। अगर किसी रोज बगीचे मे अकेले देर तक बातचीत करते हुए दोनो देखे जाते तो समझ लिया जाता कि या तो कहीं दूर-दराज मे चोरी हुई है या होनेवाली है।

सिमगल के बारे मे एक बात अया थी कि वह जाति का भले राजभर हो लेकिन उसके खून मे कुलीनता थी। उसका उठना बैठना भी ठाकुरो के दरवाजो पर था। वह अपनी बराबरी की जातियो को हिकारत की नजर से देखता था। उसका एक ही शौक था उन दिनो—पसे रखने के लिए छोटी छोटी जालिया बुनना। अब तो पस और मनीबेग चलते है लेकिन उन दिनो लोग करधन मे जाली बाँधते थे। सिमगल खाली वक्तो मे जालिया बनाता और लडको को बेचता था। गाव पर उसके दोस्त नही के बराबर थे और थे तो जाने कहा-कहा के राजगीर और मिस्त्री जो दूर दूर तक जाकर लोगो के मकान बनाते थे। कहते हैं कि सिमगल को हर धनी घर की हुलिया मालूम थी, कि किस घर का माल मकान के किस कमरे मे है, कि किस घर का किधर का हिस्सा कमजोर और पोला है।

तो जैसा मैंने कहा कि सन् '४२, सन् '४२ ही क्या कहा मैंने ? उन दिनो जब हम बाजरे अगोर रहे होते थे, हमारे सिर

के ऊपर से एक साथ कई जहाज़ बडी तेज़ी से गुज़रते थे, धरती दहल उठती थी और हरी भरी फसलो के अन्दर छिपी छोटी-बडी सभी चिडियाँ 'च्यांव-च्याव' करती हुई उड जाती थी। खेतो मे काम कर रहे सारे किसान—और खासकर हम बच्चे—काम करना बन्द करके आसमान की ओर ताकने लगते थे। ये सभी जहाज पूरब जाते और हमारे कानो मे बात पडती कि रगून या सिगापुर मे कही लडाई चल रही है। यह लडाई किनसे हो रही है, क्यो हो रही ह, इससे हमे कोई सरोकार न था। सिर्फ कुतूहल से हम दिन-भर जहाजो का आना जाना देखते रहते।

उन्ही दिनो मैंने एक नयी चीज देखी—बाजरे के खेतो के बीच से गाँव की तरफ एक पगडण्डी जाती थी। उस रास्ते से एक तिरगा झण्डा लिये और ऊँचे स्वर मे गाते हुए कुछ आदमी जा रहे थे। मचान से उतरकर उस जत्थे के आगे पीछे कुत्ते की तरह दौडते हुए गाव तक गये। मालूम हुआ कि ये लोग धाना-पुर थाने पर झण्डा गाडने जा रहे हैं। उस जत्थे मे हमारे गाव के और लोगो के साथ सिमगल भी था।

दूसरे दिन गाव मे तरह तरह की अफवाहे फैल गयी। मालूम हुआ, थाने पर जो पाच सुराजी गोलियो से शहीद हो गये उनमे मिडल मे पढनेवाला महँगू नाम का एक बहादुर लडका भी था। आठ दस लोग घायल भी हुए थे लेकिन आखिरकार थाने पर झण्डा गड गया। थाना फूक डाला गया। दारोगा और

सिपाहियों को एक कमरे में बन्द कर उन पर मिट्टी का तेल छिड़ककर जला दिया गया। थाने के सारे सामान लूट लिये गये। और इन्हीं सामानों में से एक बड़ी अद्भुत, भारी और अनोखी चीज सिमगल भी लाया है।

सिमगल के ढाबे के बाहर सारा गाँव जुटा था। वह जामुन के पेड़ पर टाँग लटकाये और उस 'चीज' को अपने सीने से चिपकाये और जांघों का सहारा दिये बैठा था। लोग उसे देख रहे थे और किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या चीज़ है? सफेद शीशे के अन्दर काली-काली रेखाएँ थीं और दो पतली काली सुइयाँ एक रेखा से दूसरी रेखा की ओर खिसक रही थीं। शीशे के नीचे पीतल का एक गोला था जो 'टिक टिक' की आवाज करता हुआ हिल रहा था। सिमगल परेशान भी था और खुश भी। परेशान इसलिए कि यह है क्या—और है कितने रुपयों का? साथ ही यह भी कि किस काम आ सकता है? इसे देखने के लिए दूर-दूर से लोग हमारे गाँव आ रहे थे।

लेकिन दो तीन रोज़ बाद सिमगल फरार हो गया और हमारे गाव लाठी बन्दूक समेत पुलिस आ धमकी। ऐसे तो आस-पास के सभी गाँवों में पुलिस-मलीटरी सुराजियों की तलाश कर रही थी और उनके 'सुराजी' होने का पूरे गाव को मजा चखा रही थी लेकिन जीयनपुर की हालत कुछ दूसरी ही थी। खड़ी फसल जला दी गयी। छप्पर फूक दिये गये। खेती करनेवाले सारे जवान रिश्तेदारियों और शहरों की तरफ भाग गये। बूढ़े

पास-पडोस के खेतो मे जा छिपे। पूछ-ताछ के दौरान बहुतो के हाथ-पैर तोड दिये गये। औरतो और लडकियो पर जाने कैसे-कैसे जुल्म किये गये यह सब किसलिए ? सिमगल के लिए। क्यो ? क्योकि उसने थाने से दिन दहाडे घडी चुरायी थी।

सबको लगता कि जीयनपुर की नाक कट गयी। अगर वह साला औरो की तरह सुराजी रहा होता तो एक बात थी लेकिन यहा तो एक चोर की वजह से सारी खेती, सारी इज्जत, सारी मान-मर्यादा मिट्टी मे मिल गयी।

पुलिस खोजती रही और वह भागता रहा और अन्त मे गिरफ्तार होकर जेल चला गया। सालो जेल काटने के बाद वह तब छूटा जब देश आज़ाद होने को आया।

मेरे बेटो, जानते हो, यह सिमगल कौन था ? नही जानते ? तो सुनो, मैं तुम्ह बताता हूँ

यह सिमगल—आज के पद्मश्री शिवमगलप्रसादजी वर्मा है जो पिछली सरकार मे कानून और न्याय मन्त्री थे और जिनका अभी हाल मे 'अभिनन्दन ग्रन्थ' प्रकाशित हुआ है।

जब वर्माजी सन् '४७ के शुरू मे बाहर आये थे तो अखबारो मे माला पहने हुए उनकी फोटो छपी थी और उनकी सेवा, त्याग, तपस्या, देशप्रेम पर सम्पादकीय निकला था। वे खादी मे इतने मोटे ताजे और साफ रग के हो गये थे कि जब गाव पर आये तो कोई पहचान न सका। लोगो को लगा कि हो न हो, सिमगला जेल नही, विलायत गया रहा होगा और वहाँ से काफी माल-

पानी लेकर लौटा है।

एक दूसरा साफ बदलाव जो धीरे धीरे दिखायी पडने लगा था, वह यह कि उस जमाने मे उसके यहा कास्टेबुल और पुलिस के दलाल आया करते थे और उस पर कभी-कभार गालियो की बौछार किया करते थे लेकिन अबकी इन्सपेक्टर, दारोगा, एस० पी० साहब, कलक्टर साहब वगैरह आते थे और नीम के नीचे बिछी खटिया पर लेट सिमगल के जगने या आख खोलने के इन्तजार मे दूर खडे रहते थे। अब वह चोर नही, नेताजी हो गया था।

वर्माजी जेल से एक सपना लाये थे। वह सपना उन्हे महात्माजी से मिला था। वे स्वार्थ और लोभ और छोटी छोटी चीजो से कोसो दूर रहते थे। उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था सेवा करना। उनकी एकमात्र लालसा थी इस इलाके की हर मामले मे तरक्की करना, उस इलाके की जो अब तक अज्ञान, अशिक्षा, अन्धविश्वास और पिछडेपन मे डूबा रहा है। उनके सामने अब मात्र जीयनपुर नही, पूरी तहसील थी। बल्कि तहसील और जिला ही नही, पूरा राष्ट्र था। न वह अब पहले की तरह 'चोट्टा साला' रह गये थे और न बेमतलब बक बक करते थे। जब कभी बोलते, लोगो को नही—दूर किसी पेड या क्षितिज की तरफ देखा करते थे। उनके पास एक और चीज़ आ गयी थी—'अन्तरात्मा' जिसे कोई नही देखता था लेकिन वे बराबर अनुभव करते रहते थे।

हा, उन्हे सुराजियो ने एक और चीज़ घलुए मे दे दी थी—हँसी। पहले वे लोगो से गाली फनकड सुनते और लडते झगडते देखे जाते थे लेकिन अब गांव-घर का कोई उन्हे 'वर्माजी' न कहकर 'सिमगल' या 'सिमगला' भी कह देता तो हँस देते। यद्यपि गाववाला को अपनी जबान साधने मे समय लगा फिर भी जब कलक्टर, एस० पी० और दूसरे उन्हे 'वर्माजी' या 'नेताजी' कहते तो आखिर वे चोट्टा रहे हो या जो हो—है तो जीयनपुर के ही। इस तरह गाववालो ने भी बिना किसी के समझाये बुझाये अपने-आप बोलने का सहूर सीख लिया।

उन्होंने एक दिन कलक्टर, तहसीलदार, दारोगा, पटवारी, डाक्टर वगैरह के साथ आस-पास के पचीसो मानिन्द और सम्पन्न जमीदारो का जमावडा किया। शहर से फोटोग्राफर और अखबारवालो को बुलाया और सबके सामने अपने सपने का मज़मून रखा। मज़मून सुनकर सभी जमीदार खडबडा उठे लेकिन कलक्टर, तहसीलदार और दारोगा ने जब इस मामले को अपने हाथ मे लिया तो लोग ठण्डे पडने लगे। बात इस पर आकर खत्म हुई कि जो जमीन और रुपये दे सकते हो, वे ज़मीन और रुपये दें और जो इन दोनो मे से कुछ भी देने के काबिल नही, वे 'श्रमदान' करे। वर्माजी ने चार बार कहा—"मेरा क्या ! मुझे तो फिकर है आप सबकी, इस इलाके की जनता की, बाल बच्चो की पढाई लिखाई की। मुझे क्या ? मैं तो यहाँ भी झोपटी मे हूँ और वहा भी रहूँगा, हफ्ते मे एक दिन उपास यहा भी करता

हूँ, वहा भी करूँगा, चर्खा यहाँ भी कातता हूँ, वहाँ भी कातूगा, उबाला हुआ पानी यहाँ भी पीता हूँ, वहाँ भी पियूगा। "

वेचू बाबा ने कभी मुझे यह बताया था कि वहा से उठते हुए मद्धूपुर के बाबू साहब ने सिरकन्दपुर के चौबे महराज से कहा था—'पण्डीजी, चलो इस ससुरा सिमगला को दे ही दें, नही तो सेध मारकर ले जायेगा। अब तो थाना-कचहरी मे सुनवाई भी न होगी। देख नही रहे हो?"

चौबेजी काफी देर तक चुप रहे, फिर बोले—"बाबू साहब, मैने एक बात देखी। बताओ, फर्क कहा है? पहले डलिया देते थे, अब चन्दा देना पड रहा है। डलिया अपनी इच्छा से देते थे, चन्दा तुम्हारी इच्छा से दे रहे हैं। और इच्छा भी क्या? सामने हाथ जोड रहे हो और पीठ पीछे दारोगा तहसीलदार खडा कर रखे हो। अब एसी हालत मे कोई क्या करे? काम तो वही ले रहे हो, चाहे डाट डपटकर लो, चाहे पुचकारकर लो। बस देखते चलो, बाबू साहब।"

"यह श्रमदान क्या है पण्डीजी?" बाबू साहब ने पूछा।

"हम मजूरो से काम लेते ह और उन्हे मजूरी देते ह, कम या वेसी—देते तो हैं ही। लेकिन ये सुराजी काम भी लेगे और एक धेला भी न देगे और कहेगे उसे श्रमदान!"

"सुराजी!" बाबू साहब हँसे, 'अगर सुराजी का मतलब सिमगला ही है तब तो हो चुका। तुम्हे तो पता ही ह कि मेरे यहा यही शिवमगलप्रसाद वर्मा दो बार सेंध मार चुका है।

पहली बार पूरी बखार साफ कर दी और दूसरी बार पतोहू और गौने आयी बिटिया का जितना गहना-गुरिया था, सब मार ले गया।"

"तुमने वही मुह पर ही कह क्यो नही दिया ?"

"अरे कहे क्या ? लोग जानते नही ह क्या ? और अब तो बडका नेता हो गया है भाई !"

बेचू बाबा ने और भी पता नही क्या क्या बताया था—सब उल जलूल, वह तो भूल गया लेकिन आज जीयनपुर और गौस-पुर के बीच मे जो 'शिवपुरम्' देख रह हो, वही वर्माजी का सपना है—एक 'उच्चतर माध्यमिक विद्यालय' जिसमे आज डेढ हजार लडके पढते हैं और साठ अध्यापक पढाते ह और जिनके प्रिंसिपल उनके लडके रामराज्य वर्मा हैं। दूसरा 'आदश बालिका इण्टर कालेज' जिसकी प्रिंसिपल उनकी पुत्रवधू है। इन विद्या-लयो के अपने-अपने छात्रावास है, प्राध्यापक कालोनी है, कृषि के फाम है, खादी आश्रम है जिनकी शाखाएँ पूरे प्रान्त भर फैली हैं, सघन क्षेत्र है जहा तिलहन, चीनी और आट की अलग-अलग चक्किया है, एक फर्लांग आयतन का 'हरित क्रान्ति' और 'पेड लगाओ' अभियान के दौरान निर्मित बगीचा है। इसी 'शिव-पुरम्' के बीच से बसे जाती ह जिसके दोनो ओर 'मगला मार्केट' है। इस आदश नगर का अपना बैंक है, एक डाकघर है, एक पुलिस चौकी है, बिजली की व्यवस्था है।

और मेरे बेटो, लाखो की आयवाले इस 'शिवपुरम' मे

पचहत्तर साल के वर्माजी—जिन्होने चाहा होता तो सोने का महल गडा कर लिया होता—एक मामूली-से खपरैल के 'काटेज' मे या जिसके आगे नीम के पाच पेड ह, उसके नीचे—चारपाई पर अपने हाथो काते सूत का गमछा लपेटे नग-धडग पडे तपस्वी का जीवन बिता रहे है। वही हफ्ते मे एक दिन उपवास, दिन मे एक समय रुखी-सूखी साग सब्जी या मट्ठा, वही चर्खा, वही लोगो के दुख दद सुनना, देश मे फैले हुए भ्रष्टाचार के आगे मजबूरी प्रगट करना, अपने बेटे पतोहू को कोसना !

हा मेरे बच्चो, दुख और तकलीफ की जैसी जिन्दगी वर्माजी बसर कर रहे है, भगवान न करे कि वैसी जिन्दगी किसी और को नसीब हो ! अगर वे अपने बेटे पतोहू को कोसते ह तो कम करते है। उनकी जगह दूसरा कोई होता तो पता नही क्या करता ! तुमने 'रामराज्य विला' नही देखा है ? लाखो की लागत से बना तीन बीघे का स्वग। क्या क्या नही है इस 'विला' मे ? एक स्कूटर, एक जीप, एक अम्बेसेडर, एक ट्रैक्टर, एक निहायत ही आधुनिक ढग का लॉन और एक इतना बडा बगला कि कोई देखे तो देखता रह जाय। दूर-दूर से इसे देखने के लिए लोग आते है और रामराज्य वर्मा को गालिया देते हुए चले जाते है।

क्यो ? क्योकि आपके पास सारी दौलत हो और बाप को ही खुश न रख सकें, अपने साथ रहने के लिए राजी न कर सकें, उसे ठीक से खिला पिला न सकें तो उस दौलत पर थू ! राम-

राज्य सफाई देते फिरते हैं कि मैं तो उन्हे अपने साथ रखना चाहता हूँ लेकिन वे रहना नही चाहते, उनका दिमाग फिर गया है। और, मन्त्रीजी रोते रहते हैं कि जिस 'शिवपुरम्' को खून-पसीना एक करके, जाने कहा-कहाँ से चन्दा जुटाकर, भीख माग कर, उपवास करके मैंने बसाया, उसी शिवपुरम् मे उसने मेरी नाक काटकर रख दी। हमे न उसकी कोठी से मतलब है, न उसके तौर-तरीको से। हम सारी जिन्दगी 'अहिंसावादी' रहे, 'सादा जीवन उच्च विचार' मेरा सिद्धान्त रहा, खादी पहनते रहे, तख्त पर सोते रहे और ये आजकल के लडके मास-मछली खायेंगे, डनलप पर सोयेंगे, टरिलिन पोलिस्टर जाने क्या-क्या पहनेंगे, हमारी उनसे कैसे निभेगी ? और ऊपर से जनता पार्टी ! अगर यही जनता पार्टी है तो भगवान भला करे ! जाने किस जनम के किन कर्मा का फल है कि यह सब देखने के लिए जिन्दा हूँ !

जनता को भी लगता कि जो जैसा करता है, वैसा भरता है। अगर ऐसा न होता तो रामराज्य की पत्नी श्रीमती रेणुका देवी अपने पति से झगडा करके अलग बँगला क्यो बनवाती ? यही नही, वे हर मामले मे अपने पति को नीचा दिखाना चाहती हैं। इनका बँगला तीन बीघे मे है तो उनका चार बीघे मे बन रहा है। अगर उनका मिस्त्री बनारस मे आया है तो इनका लखनऊ मे। कभी कभी मन्त्रीजी झुँझलाकर अपने शुभचिन्तको से कहते हैं कि भैया, उन्हे समझाओ। वे लोग यह क्या कर रहे है ? मुझे मुँह दिखाने लायक भी रखेंगे या नही ? ऐसी कौन-सी

बात है कि वे एक मे और साथ साथ नही रहना चाहते ? दो ही तो बच्चे हैं, कम से-कम उनका तो लोग खयाल करे। लेकिन आज के जमाने मे कौन किसकी सुनता है ? जब बेटा अपने बाप का नही हुआ तो बीबी तो दूसरे घर से आयी है। वह अपने पति की क्या सुनेगी ? फिर भी समझा बुझाकर मामले को सुलटाया जा सके तो सुलटाओ तुम लोग। मैं तो कह सुनकर थक गया। मेरा क्या ? मेरी तो पढाई-लिखाई भी नही हुई, जो कुछ सीखा, महात्माजी से सीखा, लेकिन सुना है कि उनके बच्चे देहरादून पढेंगे। इधर के सब स्कूल-कालेज बेकार हैं जो बच्चे दिल्ली और देहरादून पढने जायेंग ? ठीक है, जैसी तबीयत हो, वैसा करें लोग। उन्ह छोडकर बाकी दुनिया तो मूख है। हम लोगो का तो काम ही बक-बक करना है। हमारे तो मन मे आता है कि कुछ कहे लेकिन जबान खोलकर कौन बेइज्जत होने जाय ? जब अपने मन का ही करना है तो करो।

अब यही देखो ! बीसो कमेटिया है। उनमे मैं कहूँगा हेन, तो वे कहेंगे तेन, मैं कहूँगा आम, तो वे कहेंगे इमली। सबके सामने लड जायेंगे। न इज्जत का खयाल, न लिहाज। लोग भी उन्ही की सुनते हैं, समझते हैं कि ये बूढे हुए, अकल मारी गयी है, बात समझते नही हैं, आज भी महात्माजी की रट लगाये हुए हैं। खैर, अब मैं मेहमान ही कितने दिनो का हूँ और मेरा खर्च ही क्या है ? गुजारे-भर को पेंशन मिल ही जाती है। यही क्या कम है कि किसी के आगे हाथ फैलाने की नौबत नही आयी

तो मेरे बेटो, अगली गरमी की छुट्टी मे गॉव जाना तो प
की तरह 'शिवपुरम्' ही घूमकर मत लौट आना, बाबा से ि
करके वह झोपडी और नीम के पेड जरूर देखना जहाँ मन्त्र
रहते है और तपस्वी का सा जीवन बिताते है। राजा जनक
तरह उनके पास सब-कुछ है लेकिन वे निर्लिप्त है, विदेह
मगर जानते ही हो, कुटिल-खल कामी चुगलखोर और लग
बुझानेवाले वहा नही होते? और तो और, अभी हाल मे उ
खिलाफ शिकायत हुई कि अपने जमाने के जितने चोर-चाई, ड
ठग, गुण्डे, बदमाश थे सबको वर्माजी ने 'पोलिटिकल सफ
और 'फ्रीडम फाइटर' करार देकर पेंशन दिलवा रखी है
हरएक से कमीशन के बतौर आधी पेंशन लेते रहते हैं। इस
भी जाच कमेटी बैठी थी। वसे इसके पहले भी उन पर
कितनी जॉच कमेटिया बठ चुकी है, जाने कितने आरोप ल
गये है लेकिन सब बेकार! उन्हे बदनाम करने की बहुत र
कोशिशे हुई है लेकिन हर बार यह सिद्ध होता गया कि वे बे
हैं।

रामराज्य ने उनकी इच्छा के खिलाफ उनकी सगमरम
एक आदमकद मूर्ति बनवाकर रख ली है—लोगो से चन्द
मागकर जो उनकी अस्सीवी वर्षगाठ पर 'शिवपुरम्' के प्र
द्वार पर स्थापित की जायेगी। मन्त्रीजी गुस्सा होते ह,
लडके का डाटते फटकारते हैं कि यह दिन देखने से पहले
इस दुनिया से विदा हो जाना चाहेंगे।

मेरे बच्चो, तुम्हे यह जानकर बेहद खुशी होगी कि बीच के दिनो मे मेरी पढाई-लिखाई उसी विद्यालय मे हुई थी जिसके सस्थापक और प्रबधक यही शिवमगलप्रसादजी वर्मा थे। वर्माजी दो तीन महीने पहले जेल से छूटकर आये और विद्यालय को चलाने के लिए पास-पडोस से लडके जुटा रहे थे। पाच मे फेल होने के कारण जब मेरा नाम आसानी से दर्जा सात मे लिख गया तो मैने वही पढने का फैसला कर लिया। सच कहो तो जितने फेलियर थे, सब उस विद्यालय के विद्यार्थी बन गये। इसी तरह वर्माजी के त्याग और सेवा की पुकार पर नौकरी की खोज मे भटकनेवाले चार-पाच युवको ने सुनहले भविष्य की उम्मीद मे वहा मुफ्त पढाने का व्रत लिया।

अभी ठीक से पढाई भी शुरू न हुई थी कि १५ अगस्त १९४७ को देश आजाद हो गया। और यह खबर हमारे गाँव दो दिन बाद पहुँची।

यह आजादी क्या चीज होती है, हम नही जानते थे लेकिन गाव मे खुशी का ठिकाना न था। मुझे हल्का-हल्का याद है कि गाव के सभी लोग कुएँ पर जुटे थे और कुछ लोग मवेशियो को पिलाने के लिए पानी भर रहे थे। रूपन भैया, साधो भैया, बच्चन भैया, सिर पर गगरे का पानी लिये जगत पर नाचने लगे। चमटोल से डफला और नगाडा बजाते हुए सारे चमार ताटो के पास अखाडे पर आ जुटे थे। भग्गू सिमगल मे झण्डा लेकर सबसे ऊँचे ताड के पड पर चढ गया था और बाँस मे लगा तिरगा झण्डा

आसमान मे फहरा आया था। महँगी और लाखन साडी पहनकर लवण्डा बने थे और डफले के ताल पर उछल-कूद रहे थे।

सिमगल का बुरा हाल था। वह पागल की तरह गाव के बीस चक्कर लगा चुका था और पसीने-पसीने होकर भी दुरुस्त था। वह अकेले जय-जयकार कर रहा था—कभी भारतमाता की जय, कभी महात्मा गाधी की जय, कभी नेहरू की जय। वह जात-बिरादरी सब भूल भालकर हर-एक को 'जयहिन्द' बोल रहा था। अगर उससे कोई कुछ भी पूछता तो वह उसे पकडकर रोने लगता और अपनी पीठ, चूतड, जाँघ पर पडे काले निशान दिखाने लगता और ताडो के एक सिरे से दूसरे सिरे तक 'जयहिन्द' चिल्लाता हुआ दौड जाता। उसने लोगो के ललकारने पर दौड मे कुत्ता से होड ली और हँसता हुआ खडा हो गया। पुलिस ने मार-मारकर घुटने तोड दिये थे और वह पहलेवाला दमखम भी न रहा था।

मुझे याद है कि मेरे सत्तर साल के बाबा—यानी तुम्हारे आजा जोश मे आकर झूले पर जा खडे हुए थे और पेंगे मारने लगे थे।

एक ओर वे पेंग मारते हुए पटरे के दूसरे सिरे को आसमान मे लहराते हुए तिरगे तक ले जाना चाहते थे, दूसरी ओर डफले और नगाडे बज रह थे, तीसरी ओर महँगी और लाखन नाच रहे थे, चौथी ओर तीन-चार कण्डालो मे गुड का रस घोला जा रहा था, पाचवी ओर चरन्नी पर बँधे सभी बैलो, भैसो, गायो की आख

ऊचा रहे हमारा ।'

आज हम सोचते है कि औरतो को आजादी से क्या ? उन्हे कैसे मालूम हुआ कि मुल्क आजाद हो गया है ! तो मेरे बच्चो, सचमुच उन्हे कुछ पता नही था—सिवा इसके कि सन् '४२ मे गाँव के कुछ लोग भी झण्डा गाडने धानापुर गये थे, सिमगल ने कोई चीज चुरायी थी और पुलिस महीनो तक गाँव को तबाह करती रही । उन्होने सिर्फ इतना देखा कि जब हमारे आदमी, बेटे, ससुर, भसुर, जेठ, भाई सुबह से नाच गा रहे हैं तो जरूर कोई अच्छी बात हुई है । सुबह से हल नही चले, भैसे नही खुली, सनई और चरी नही कटी, इसका मतलब जरूर कुछ खास होगा नही तो मरद लोग अपने-अपने घर यह नही कहते कि लाई, चना, मटर, दाना जो कुछ हो ताड बाबा के पास दे जाओ ।

सिमगल ने अपने बेटे सिपाही को—जिसका नाम बाद मे उसने रामराज्य रखा—हर जगह दौडाया कि विद्यालय पर लडको को जुटाओ, दोपहर बाद १५ अगस्त, सन् '४७ होगा और सबको मिठाइयाँ बँटेंगी । साथ ही विद्यालय के संस्थापक वर्माजी महात्माजी के आशीर्वाद से भाषण भी देगे ।

इसी दिन मुझे मालूम हुआ कि सिमगल का नाम वर्माजी हो गया है ।

विद्यालय के सभी तीसो विद्यार्थी धीरे-धीरे जुट गये । सभी लोग तीन कतारो मे नीम के नीचे बैठ गये । सामने कुर्सियो पर अध्यापक । जैसे ही थके-मादे वर्माजी आये, मास्टर साहब

के इशारे पर नारा लगना शुरू हुआ—'भारतमाता जिन्दा-वाद !' 'गान्धीजी जिन्दावाद !' 'पन्द्रह अगस्त जिन्दावाद !' 'शिवमगलप्रसाद वर्मा जिन्दाबाद !' चूकि लडको मे मेरी आवाज़ सबसे बुलन्द और भारी थी और उस समय के प्रिंसिपल जगदम्बा लाल कोविद, साहित्यरत्न (प्रथम खण्ड) ने सारे नारे मुझे घण्टे-भर तक रटाये थे, इसलिए उछल उछलकर पहले नारे मैं ही वाल रहा था। यही नही, शुरू मे तिरंगे झण्डे को, अखवार मे छपी महात्माजी की फोटू को और वर्माजी को माला पहनाने का सम्मान भी लडको मे मुझे ही मिला था।

सभा शुरू हुई। सबसे पहले प्रिंसिपल साहव ने देर तक अख-वार का पहला पन्ना जोर-जोर से वीर रस मे पढा। और जब जव वे जोश मे आकर मेज पर घूसा मारते थे, हम अपने-आप समझ जाते थे कि यहां ताली वजाना है। इसमे भी अगुआई मैं ही कर रहा था।

अन्त मे तालियो और नारो के वीच वर्माजी ने भाषण शुरू किया। उन्होने पहले तिरंगे को प्रणाम किया। फिर अखवार के फोटुओ का वारी वारी से एक एक नाम लेकर जिन्दावाद वुल-वाया और थक जाने के वाद कहा—'देवियो और सज्जनो' 'भाइयो और वहनो' जसे जैसे उनकी टांगे कापती गयी, वैसे-वैसे उनका आवेश वढता गया और गला भर्रा आया—"आज १५ अगस्त, १९४७ ई० है। आज के दिन हम आज़ाद हैं। आज से चोरी वन्द। दूसरे के घर के अन्दर मे सेंध मारना वन्द। रुपये पस,

गहना-गुरिया, सोना चाँदी के लिए सुम्मी औग सवरी रखना वन्द। इन सवकी ज़रूरत नही पडेगी। सबको खाना और कपडा-लत्ता मिलेगा। जब चोरियै न होगी तव सब लोग सुख की नीद सोयगे। महात्माजी कहे है कि किसी को मारना पाप, किसी से छीनना पाप, किसी की बखारी से कुछ चुराना पाप। मास्टर लोग शिकायत करते है कि लडके लोग एक-दूसरे की कलम चुरा लेते है, कापी-किताब चुरा लेते हैं मतलब यह कि चोरी की जैसी सजा पहले मिलती थी, अब तो नहियै मिलेगी। जब चोरियै न होगी तो सजा काहे को मिलेगी।"

मेरे बच्चो, आज मै याद करता हूँ तो हँसी आती है। शायद यह उनकी जिन्दगी का पहला भाषण था जिसका विषय आज़ादी नही, चोरी था। जब वे 'जयहिन्द' बोलने के बाद हमारी तरफ अपनी पीठ उघाडकर रोने लगे तो खूब तालियाँ बजी। उनकी चितकावर पीठ अग्रेजो के ज़ुल्म की अजूबा कहानी थी।

खैर छोडो यह सब, तो भाषण के बाद सचमुच मिठाइया बँटी। सबको दो-दो लड्डू मिले। लेकिन प्रिंसिपल साहब दूसरे लडको को बाँटते हुए जब मेरे पास आये तो उन्होने मेरी पीठ थपथपाते हुए चार लड्डू दिये। इसी समय वर्माजी भी आ गये। उन्होने प्रिंसिपल साहब को रोका—"नही, जद्दू को एक और। इसकी आवाज तो बहुत बुलन्द है।" और उन्होने अपने हाथ से एक और लड्डू दिया। मै इतना खुश हुआ कि दोनो हाथ मे लड्डू दबाये घर भागा।

म जैसे ही घर मे घुसा कि दालान मे ढेंकी पर बैठे डण्डा लिये पिताजी मिल गये। वे मेरा ही इन्तजार कर रहे थे। उन्होने पहले मेरे दोनो गाल पर एक एक थप्पड लगाया और उसके वाद पीठ पर 'धाय-धाँय' तीन डण्डा। मेरी तो समझ मे ही कुछ नही आया। सारी खुशी काफूर हो गयी और मैं फूट फूटकर रोने लगा। उन्होने जैसे ही चौथी वार डण्डा ताना कि बुआ आ गयी और उनका हाथ पकड लिया।

"यह साला कहने को राजपूत की औलाद। छत्री का बेटा। और जाकर भर विलार का जि दावाद बोल रहा है? उस ससुरा सिमगला का जिन्दावाद? सारी जि दगी सेंध मारता रहा और अब साला वर्मा हो गया है? वर्माजी! वर्माजी की भाँट!"

"अर तो लडका है। इसे पता ही क्या, मास्टर लोग जो कहेगे, करेगा"

"यह अब फिर करेगा? चोर का जिन्दावाद बोलेगा? हरामजादा पढने के लिए गया है कि जिन्दाबाद बोलने के लिए? अपने वाप का भी जि दावाद बोला है कभी? अब तू ही वता, मैं किसे मुह दिखाऊँगा? वह तो कल से पूरे परगने भर घूम-घूम कहता फिरेगा कि रपचुत हमारी जय-जयकार कर रहे हैं"

"भैया, तुम तो झूठे बात का बतगड बना रहे हो!" बुआ बोली।

"सुन वे ! अब बहुत पढाई हो गयी !" वे डण्डा पटकते हुए दालान से बाहर जाने लगे, "बचिया, कल से इसका इस्कूल जाना बन्द !"

मेरे बेटो, तब से लेकर आज तक एक जमाना हुआ। आज तीस साल से ऊपर हो रहे है और मैं अपने पन्द्रह अगस्त पर गौर करता हूँ तो एक अद्भुत और भयानक चीज दिखायी पडती है जिस पर काफी दिनो बाद मेरा ध्यान गया था। इस सिलसिले मे मैं अपने बाप या सिमगल या दुनिया-भर के लोगो के बारे मे बातें नही करता—मैं सिफ इतना देखता हूँ कि मेरे लिए आजादी की शुरुआत चापलूसी और बेईमानी की शुरुआत थी।

सिर्फ मुझे दो के बजाय पाँच मिठाइयाँ इसलिए नही दी गयी कि मैंने अपने नारो और तालियो से जगदम्बा लाल की साख जमा दी थी और वर्माजी को खुश कर दिया था, बल्कि इसलिए भी कि दूसरे लडको के मुकाबले मैं खाते-पीते घराने और ऊँची जात का था !

●●